पंजीयन संख्या : 68939/98

ज्ञान तत्व

विशेषांक

सत्यता एवं निष्पक्षता का निर्भीक पाक्षिक

APR 2026
अंक - 05

489

महिला सशक्तिकरण कितनी समस्या कितना समाधान।

4

महिला वर्ग या परिवार का अंग

“ महिला सशक्तिकरण या परिवार सशक्तिकरण?
स्वतंत्रता और सहजीवन के बीच संतुलन ही समाज की असली ताकत है - टकराव नहीं, समन्वय ही भविष्य का मार्ग तय करेगा। ”

अर्धनारीश्वर से अर्धसत्य तक

प्रकाशन की तिथि - 01-04-2026 पोस्ट की तिथि - 16-04-2026

हमारी संस्थाएं एवं कार्य

MARGDARSHAK
मार्गदर्शक
"शराफत से समझदारी की ओर"

"हम समाज विज्ञान पर वैश्विक शोध कर ऐसे निष्कर्ष प्रस्तुत करते हैं जो व्यवहारिक भी हों और समाज के लिए भरोसेमंद भी।"

GYAN YAGYA
ज्ञानयज्ञ परिवार
वैचारिक संतुलनवादी हिंदुत्व की प्रयोगशाला

"ज्ञानयज्ञ परिवार विचार और भावना के संतुलन के साथ सत्य और अहिंसा पर आधारित सामाजिक परिवर्तन की दिशा तय करता है।"

कार्यक्रम

"चर्चा कार्यक्रम"

ज्ञान चर्चा-प्रतिदिन शाम 8:00 बजे से 9:00 बजे तक किसी एक पूर्व घोषित विषय पर स्वतंत्र वेबिनार जूम ID 83288549180 और पासवर्ड 12345 है।

"ज्ञान केन्द्र"

"वैचारिक आधार पर सत्य और अहिंसा का मार्ग मजबूत करते हुए, भावना और बुद्धि के संतुलन के लिए देशभर में कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। समाज सर्वोच्च का भाव स्थापित करना और इस प्रयास को विचार-समन्वय व परिवर्तन के एक तीर्थ के रूप में विकसित करना हमारा उद्देश्य है।"

"संविधान सभा"

ऐसे न्यूनतम पाँच सौ लोगों की टीम तैयार करना जो समाज विज्ञान पर रिसर्च करने की क्षमता रखते हैं।

sanvidhansabha.info

"मार्गदर्शक प्रकाशन"

"समाजशास्त्र और भारतीय सामाजिक दर्शन से जुड़े गंभीर विचार साहित्य का प्रकाशन करना और उन्हें बेहद कम मूल्य पर उपलब्ध कराना, ताकि ये पुस्तकें वैश्विक स्तर पर भारत का प्रतिनिधित्व कर सकें।"

"मार्गदर्शक मण्डल"

ऐसे न्यूनतम पाँच सौ लोगों की टीम तैयार करना जो समाज विज्ञान पर रिसर्च करने की क्षमता रखते हैं।

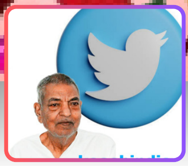

सिंहावलोकन

04 **महिला सशक्तिकरण कितनी समस्या कितना समाधान**

08 **महिला वर्ग या परिवार का अंग**

09 **महिला-पुरुष के बीच दूरी घटना उचित है या बढ़ना**

10 **प्रश्नोत्तर**

21 **मार्गदर्शक प्रकाशन**

साथियों की कलम से

34 **स्त्री-पुरुष संबंध मर्यादा, समानता और मित्रता का समन्वय** पवंजय त्रिपाठी: लखनऊ UP

30 **अर्धनारीश्वर से अर्धसत्य तक स्त्री पुरुष सम्बन्ध का बौद्धिक पुनर्पाठ** ज्ञानेन्द्र आर्य सह संपादक

ज्ञानतत्त्व दैनिक

सत्यता और निष्पक्षता का आपका दैनिक स्रोत

GYANTATVA.IN

रामानुजगंज और आसपास के क्षेत्रों के लिए एक नया, विश्वसनीय और जिम्मेदार समाचार मंच ज्ञानतत्त्व दैनिक अब आपके बीच है। यह वेब पोर्टल स्थानीय से लेकर राष्ट्रीय और वैश्विक स्तर तक की खबरों को तथ्यात्मक, संतुलित और स्पष्ट रूप में प्रस्तुत करता है।
हमारा उद्देश्य केवल समाचार देना नहीं, बल्कि समाज के वास्तविक मुद्दों को सामने लाना और जन-सरोकार को मजबूत करना है।

प्रधान संपादक
बजरंग लाल अग्रवाल
(बजरंग मुनि)

संपादक मण्डल
नरेन्द्र सिंह
संजय तिवारी

सह संपादक
ज्ञानेन्द्र आर्य

सदस्यता नियमन
संजय गुप्ता 8726694777
कुशल दुबे 7999934238

सज्जा
लाल बाबू रवि

वितरण एवं मुद्रण सहयोग
रबीन्द्र विश्वास

ज्ञान केन्द्र विचार, समन्वय और परिवर्तन के तीर्थ

महिला सशक्तिकरण कितनी समस्या कितना समाधान।

बजरंग मुनि
प्रधान संपादक

- **व्यवस्थाएँ विचार-मंथन से बनती हैं, पर संशोधन रुकने पर वे रूढ़ि बन जाती हैं।**
- **रूढ़ि-ग्रस्त व्यवस्था समाज में विकृति पैदा करती है।**
- **महापुरुष सुधार करते हैं, जबकि राजनेता विकृतियों का राजनीतिक लाभ उठाते हैं।**

विचार मंथन के बाद कुछ व्यवस्थाएँ बनती हैं। यदि देशकाल परिस्थिति के अनुसार व्यवस्थाओं में संशोधन की प्रक्रिया बंद हो जाये तो व्यवस्थाएँ रूढ़ि बन जाती हैं। ऐसी रूढ़ि-ग्रस्त व्यवस्थाएँ समाज में विकृति पैदा करती हैं। महापुरुष ऐसी विकृतियों के समाधान के लिए व्यवस्थाओं में संशोधन का प्रयास करते हैं तो लोकतांत्रिक देशों के राजनेता ऐसी विकृतियों का लाभ उठाकर स्वयं को स्थापित करने की कोशिश करते हैं। समाज में कोई भी दो व्यक्ति एक समान सोच और क्षमता के नहीं होते। स्वाभाविक है कि किन्हीं दो व्यक्तियों की नीयत भी एक समान नहीं होती। समाज के ठीक-ठीक संचालन के लिए प्रत्येक व्यक्ति की अधिकतम स्वतंत्रता की सुरक्षा आवश्यक होती है। दूसरी ओर समाज के सुचारु संचालन के लिए सहजीवन भी बहुत महत्वपूर्ण होता है। महापुरुष स्वतंत्रता और सहजीवन के बीच तालमेल की व्यवस्था करते हैं, तो चालाक लोग ऐसे तालमेल को तोड़कर निरंतर वर्ग विद्वेष, वर्ग संघर्ष की दिशा में ले जाने का प्रयास करते हैं।

एक प्राकृतिक अनिवार्यता है कि महिला और पुरुष की अपनी-अपनी स्वतंत्रता को अक्षुण्ण रखते हुए भी दोनों के बीच एकत्रीकरण दोनों की अनिवार्य आवश्यकता है। साथ ही यह भी आवश्यक है कि दोनों का एकत्रीकरण भिन्न परिवारों से होना चाहिए। इस तरह परिवार व्यवस्था हमारी अनिवार्यता है और परिवार किसी व्यवस्था के हिसाब से ही चलना चाहिए। चालाक लोग महिला और पुरुष को दो वर्गों में विभाजित करके निरंतर टकराव का तानाबाना बुनते रहते हैं। ये कभी दोनों के बीच सामंजस्य का प्रयास नहीं करते बल्कि इनका हर प्रयास इन दोनों के बीच टकराव बढ़ाने वाला होता है। पुराने जमाने में महिला और पुरुष के बीच अधिकारों की कोई छीना-झपटी नहीं थी। दोनों के अधिकारों का योग समान था। परिवार के सदस्य मिलकर कार्य विभाजन कर लेते थे जिसमें बाहर का काम पुरुष तथा घर का काम महिला के जिम्मे आमतौर पर होता था। धीरे-धीरे पारिवारिक सहमति हटकर यह

व्यवस्था रूढ़ हो गई और इस विकृति का चालाक लोगों ने लाभ उठाकर महिला सशक्तिकरण का एक घातक अभियान छेड़ दिया।

ये चालाक राजनेता दो भागों में बँट गये। एक पुरानी परिवार व्यवस्था को उसी तरह बनाये रखने का पक्षधर हो गया तो दूसरा उस व्यवस्था को पूरी तरह बदलने का पक्षधर। इन लोगों ने सात आधारों पर समाज को तो पूरी तरह तोड़कर छिन्न-भिन्न कर दिया था, किन्तु परिवार व्यवस्था अब तक नहीं तोड़ी जा सकी थी। महिला सशक्तिकरण का नारा अब सफलतापूर्वक उस कार्य को कर रहा है। मैं आज तक नहीं समझ सका कि महिला किससे सशक्त होना चाहती है—पति से, पिता से, भाई से या अन्य किससे? वह परिवार से सशक्त होना चाहती है या समाज से? महिलाओं को यह स्पष्ट करना चाहिए कि उन्हें समान अधिकार चाहिए या विशेष अधिकार। आज तक किसी महिला सशक्तिकरण का नारा लगाने वाली महिला ने इन प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया। यदि सशक्त होना है तो महिला या पुरुष को होना चाहिए या परिवार व्यवस्था को, समाज व्यवस्था को। मैं मानता हूँ कि पुरुष प्रधान व्यवस्था को परिवार की सहमति से हटकर रूढ़ हो जाने से कुछ विकृतियाँ आयी हैं, किन्तु महिला सशक्तिकरण उसका किसी भी रूप में कोई समाधान न होकर बल्कि एक बड़ी परिवार-तोड़क, समाज-तोड़क समस्या के रूप में विस्तार पा रही है। महिला और पुरुष परिवार में आपस में बैठकर अपने निर्णय करें। इसमें किसी अन्य को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, किन्तु कुछ आधुनिक महिलाएँ किसी परिवार रूपी खूंटे से बंधकर नहीं रहना चाहतीं। उन्हें पूरी आज़ादी चाहिए, भले ही उसके दुष्परिणाम कुछ भी क्यों न हों। ऐसी महिलाओं को यदि अपनी स्वतंत्रता में सुख मिलता है तो हमें इससे कोई आपत्ति नहीं। वे अपनी नाक कटाने में भगवान का दर्शन करने को स्वतंत्र हैं, किन्तु उन्हें कोई अधिकार नहीं कि वे अन्य परिवारों की महिलाओं में यह विकृत भावना विकसित करें। मैं तो देख रहा हूँ कि आज देश के राजनेता पूरी ताकत से महिला सशक्तिकरण जैसे घातक नारे के विस्तार में लगे हुए हैं। इन्हें एक ओर तो महिलाओं को सशक्त देखने का प्रयास भी करना पड़ता है तो दूसरी ओर महिलाओं की घटती हुई संख्या के कारण पुरुषों के समक्ष होने वाली कठिनाइयों की भी चिंता बनी रहती है। मैं आज तक नहीं समझा कि महिलाओं की संख्या भी बढ़े और महिलाओं की शक्ति भी बढ़े—ये दोनों कार्य एक साथ कैसे संभव हैं। यदि महिलाओं की मांग बढ़ेगी तो उनकी शक्ति अपने आप बढ़ेगी और यदि महिलाओं की आवश्यकता कम होगी तो शक्ति पर बुरा प्रभाव पड़ेगा, किन्तु राजनेताओं को इस बात की कोई चिंता नहीं।

हमारे संत-गुरु भी परम्परागत परिवार व्यवस्था में कोई संशोधन न करके महिला सशक्तिकरण का घातक समर्थन कर रहे हैं। स्पष्ट है कि परिवार में महिलाओं को सम्पत्ति तथा परिवार संचालन में समानता का अधिकार मिलना चाहिए, जो अभी एकपक्षीय रूप से पुरुषों के पक्ष में है। हमारे संत लोग कोई ऐसे प्रयास नहीं कर रहे हैं कि परिवार में सम्पत्ति और परिवार संचालन में महिला-पुरुष का कोई भेदभाव न रहे, अर्थात कानूनी और सामाजिक आधार पर सम्पत्ति और परिवार संचालन में सब समान हों। हमारे नासमझ संत हमारे धूर्त राजनेताओं के चक्कर में फँसकर महिला सशक्तिकरण का घातक नारा लगाने में सहयोग करने लगे हैं, जो ठीक नहीं। परिवार व्यवस्था लोकतांत्रिक हो—इसमें हमारे संत महात्माओं को बुराई दिखती है। तो दूसरी ओर महिला सशक्तिकरण जैसी घातक बीमारी में उन्हें कोई बुराई नहीं दिखती। यहाँ तक कि अनेक संत-गुरु तो अन्य सामाजिक कार्य छोड़कर "बेटी बचाओ" जैसे नारे के प्रचार में ही लग गये हैं।

किसी भी व्यक्ति को यदि विशेष शक्ति दी जाती है तो उसके दुरुपयोग की संभावना भी बनी रहती है और उस पर नियंत्रण के लिए भी विशेष प्रयास करने पड़ते हैं। किन्तु यदि किसी वर्ग को विशेष अधिकार दिये जाएँ तो उस वर्ग के धूर्त लोग समाज के अन्य शरीफ लोगों का भरपूर शोषण करते हैं। परिणामस्वरूप धूर्तों की शक्ति मजबूत होती जाती है। आज यदि भारत में धूर्तता अधिक शक्तिशाली हो रही है तो उसका एक मात्र कारण है विभिन्न वर्गों को विशेष अधिकार दिया जाना। महिला सशक्तिकरण के नाम पर महिलाओं को विशेष अधिकार दिया जाना भी धूर्त महिलाओं द्वारा शरीफ पुरुषों के शोषण का हथियार बनना निश्चित है, बल्कि आमतौर पर देखा जा रहा है कि मुट्ठी भर धूर्त महिलाएँ शरीफ परिवारों की महिलाओं तक का शोषण करती हैं। सास और बहू में जो जितनी अधिक धूर्त होगी, वह उतनी ही अधिक शरीफ महिला का शोषण करेगी क्योंकि भारत का महिला सशक्तिकरण का नारा धूर्त महिलाओं के लिए एक हथियार का काम करता है। धूर्तों का सशक्तिकरण हमेशा अन्यायपूर्ण होता है और इसलिए किसी वर्ग को कभी भी विशेषाधिकार नहीं देना चाहिए।

आज भारत में संवैधानिक रूप से सबको समान अधिकार प्राप्त है। उस अधिकार में किसी भी रूप में छेड़छाड़ करना उचित नहीं, किन्तु स्वार्थी तत्व महिला सशक्तिकरण के नाम पर निरंतर ऐसी छेड़छाड़ में व्यस्त हैं। हमारा कर्तव्य है कि हम महिला सशक्तिकरण के घातक नारे के विरुद्ध जनमत जागृत करें। जो पुरुष अनजाने में भ्रमवश इस नारे का समर्थन कर रहे हैं, उन्हें हम वास्तविकता समझाने का प्रयास करें। जो लोग वर्तमान सामाजिक विकृति में किसी प्रकार के किसी संशोधन के विरुद्ध हैं, उन्हें भी हम सहमत करें कि वे महिला-पुरुष के बीच भेदभाव को न चलने दें। हम सरकार को भी तैयार करें कि वह महिला सशक्तिकरण जैसे घातक प्रयास को छोड़ दें, किन्तु सबसे अधिक सतर्कता उन महिलाओं से आवश्यक है जो अपनी नाक कटने में भगवान का दर्शन होने का घातक विचार समाज में फैला रही हैं। इन महिलाओं के पास न तो कुछ अन्य लिखने को है, न बोलने को। ये परम स्वतंत्र हैं। इन्हें न परिवार चलाना है, न समाज चलाना है। या तो ऐसी मुट्ठी भर महिलाएँ अपने शारीरिक या भौतिक सुख के लिए ऐसा दुष्प्रचार करती हैं या ये किसी विदेशी एजेंट के रूप में विदेशी धन लेकर यह महिला सशक्तिकरण का नारा प्रचारित करती हैं। हमें इस मामले में सतर्कता बरतनी चाहिए कि हमारे परिवारों की महिलाओं के बीच इस घातक दुष्प्रचार के विषाणु पैदा न हो पाएं। ऐसी मुट्ठी भर पेशेवर महिलाओं से दूरी बनाकर रखनी चाहिए। बल्कि मैं तो यहाँ तक सोचता हूँ कि इस प्रकार की विचारधारा युक्त

महिलाओं का सामाजिक बहिष्कार भी होना चाहिए। किसी परिवार के सदस्य अपने आंतरिक जीवन में मिल बैठकर अपना निर्णय करने के लिए स्वतंत्र हों, यहाँ तक उचित है, किन्तु उनके आंतरिक मामलों में टकराव पैदा करने का प्रयास बहुत अधिक घातक होगा—यह भी एक सच्चाई है। परिवार व्यवस्था स्त्री और पुरुष के बीच मिलकर तीन पैर की दौड़ के समान है, जिसमें दोनों को मिलकर उसके तरीके खोजने हैं। बाहर के लोगों की सलाह या कानूनी हस्तक्षेप उस प्रतिस्पर्धा में हमेशा नुकसानदायक होगा। इस दौड़ में पुरुष को मजबूत होना चाहिए या महिला को—यह वे दोनों मिलकर तय करेंगे अथवा वे बाहर के लोग जो स्वयं इस दौड़ में प्रतिस्पर्धी हैं। दुर्भाग्य से बाहर के लोग परिवार व्यवस्था में हस्तक्षेप करने में सफल हो रहे हैं, जिसमें सरकार और ऐसे चालाक लोगों के बीच एक तालमेल दिख रहा है। हमारे लिए उचित है कि हम महिला सशक्तिकरण के प्रयास के नाम पर हो रही किसी भी ऐसी योजना को विफल करने में भरपूर सहयोग करें। इस निमित्त हमें चार काम करने चाहिए-

1. पारंपरिक परिवार व्यवस्था की जगह लोकतांत्रिक परिवार व्यवस्था को प्रोत्साहित करें।
2. पुरुषों को इस बात के लिए तैयार करें कि वे महिलाओं के साथ समानता का व्यवहार करने की आदत डालें।
3. महिलाओं को इस बात के लिए तैयार करें कि उनके साथ किसी तरह का कोई अन्याय नहीं हो रहा है, बल्कि अन्याय का प्रचार करके सहजीवन और परिवार व्यवस्था को गंभीर क्षति पहुँचाई जा रही है।
4. महिलाओं को यह भी आभास कराया जाए कि यदि पति-पत्नी के बीच अविश्वास की दीवार खड़ी होगी तो वह महिलाओं के लिए भी हानिकारक होगी, क्योंकि महिला और पुरुष एक-दूसरे के पूरक हैं। यदि अविश्वास होगा तो संतानोत्पत्ति में भी कठिनाई होगी और उनके लालन-पालन, संस्कार में भी। यदि हम ये चार बातें समझाने में सफल हो जाएँ, तो महिला सशक्तिकरण का नारा लगाने वाले स्वार्थी तत्व अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो पाएँगे।

महिला आरक्षण समाधान या समस्या?

किसी भी समस्या के समाधान के पूर्व समस्या की पहचान, कारण, समाधान के लाभ और हानि की समीक्षा स्वाभाविक है। सिद्धांत रूप में आरक्षण घातक होता है। हजारों वर्ष पूर्व परिवार में पुरुष प्रधानता आरक्षण के रूप में स्थापित हुई तथा उस प्रधानता ने समाज में भी पुरुष प्रधान व्यवस्था का स्वरूप ग्रहण कर लिया। महिला और पुरुष दो वर्ग के रूप में स्थापित होने लगे। महिलाओं की क्षमता और योग्यता की सीमाएँ निर्धारित हुईं, जो पुरुषों द्वारा अपने पक्ष में बनाई गईं। दुष्ट प्रवृत्ति पुरुषों द्वारा ऐसी पुरुष प्रधानता का दुरुपयोग स्वाभाविक था। दुष्ट प्रवृत्ति पुरुषों ने इसका लाभ भी खूब उठाया। इस्लाम में तो ऐसे एकपक्षीय नियम ही बना दिए गए कि परिवार में मालिक पति होगा, किन्तु हिन्दुत्व में भी पुरुष मुखिया की व्यवस्था मालिक से कोई बहुत कम नहीं रही।

इस समाज व्यवस्था को तोड़ने के नाम से महिला उत्पीड़न रोकने के अनेक कानून बने। महिला आरक्षण प्रयास उसी की एक कड़ी है। निस्संदेह ऐसे प्रयत्नों से पुरुष प्रधान व्यवस्था टूटेगी और महिलाओं को आगे आने का अवसर मिलेगा। किन्तु विचारणीय प्रश्न यह भी है कि इन प्रयत्नों का संपूर्ण समाज व्यवस्था पर क्या और कितना प्रभाव पड़ेगा। एक सर्वेक्षण के अनुसार ऐसे कानूनों का सर्वाधिक लाभ धूर्त महिलाओं ने उठाया है। यहाँ तक कि धूर्त पुरुषों ने भी शरीफ पुरुषों के उत्पीड़न के उद्देश्य से महिला उत्पीड़न प्रावधानों का भरपूर दुरुपयोग किया। कुल मिलाकर वर्ग विद्वेष, वर्ग संघर्ष मजबूत हुआ और वर्ग समन्वय टूटा। परिवार व्यवस्था में भी टूटन बढ़ने लगी। वर्तमान महिला आरक्षण विधेयक इस टूटन को और अधिक बढ़ाएगा।

वर्तमान आरक्षण विधेयक का एक और दुष्प्रभाव होगा। कानूनी अधिकार सक्षम परिवारों की ओर केंद्रित हो जाएँगे। पहले संसद में यदि चार सौ परिवारों का प्रतिनिधित्व था, तो वह अब घटकर तीन सौ परिवारों तक सिमट जाएगा। यदि युवकों को भी आरक्षण दे दिया जाए, तो फिर तो और भी सुविधा हो जाएगी सौ परिवारों की ही ठेकेदारी में संसद सिमट जाएगी। सरकारी नौकरियों का भी यही हाल होगा कि नौकरियाँ कुछ परिवारों तक सिमटने लगेंगी। यह केंद्रीकरण तो और भी अधिक घातक होगा।

महिला और पुरुष के बीच की दूरी क्या हो - यह भी एक विषय है। यह दूरी यदि सीमा से अधिक बढ़ी तो नई पीढ़ी का सृजन रुकेगा और सीमा से अधिक घटी तो विध्वंस होगा। स्त्री और पुरुष की तुलना आग और बारूद से की जाती है। आग और बारूद की सीमा क्या हो यह तय करना आसान नहीं। इसलिए समाज ने सहमत स्त्री-पुरुष के बीच की दूरी को न्यूनतम कर दिया और उसे पति-पत्नी के रूप में भी मान्यता दे दी और वैश्यालय के रूप में भी। दूसरी ओर असहमत स्त्री-पुरुष के बीच इस दूरी को अधिकतम कर दिया. यहाँ तक कि परिवार में भी। वर्तमान व्यवस्था इस दूरी की सीमाओं के निर्धारण में खिलवाड़ कर रही है। सहमत स्त्री-पुरुषों के बीच दूरी बढ़ाई जा रही है वैश्यालय या बार बालाओं पर रोक लगाकर तो असहमतों के बीच दूरी घटाई जा रही है सहशिक्षा प्रोत्साहन या सरकारी नौकरी, संसद आदि में आरक्षण देकर। यह दूरी घटेगी तो उससे होने वाली असुरक्षा भी सिरदर्द बनेगी ही। एक ओर आग और बारूद की दूरी घटाने का आनंद और दूसरी ओर रुचिका राठौर या नारायण दत्त तिवारी जैसे विध्वंस पर हाय-तौबा एक साथ कैसे संभव है?

महिला आरक्षण विधेयक की समीक्षा में हमें प्राथमिकताएँ तय करनी होंगी कि हम भारत में चरित्र पतन, भ्रष्टाचार आदि को पहली प्राथमिकता मानते हैं या महिला-पुरुष असमानता को। यह असमानता जन-जागृति से कम होने में लंबा समय लगेगा, किन्तु दुष्प्रभाव नहीं होगा। यदि यह काम कानून से होगा तो जल्दी होगा और अनेक समस्याएँ पैदा करेगा। मैं तो इस मत का हूँ कि यदि महिला-पुरुष असमानता जल्दी दूर हो और वर्ग विद्वेष को बढ़ावा दे, अधिकार सक्षम परिवारों तक केंद्रित करे तथा धूर्तता को मजबूत करे, तो यह प्रयास लाभ कम और हानि अधिक करेगा। ऐसी जल्दबाजी से बचना चाहिए। पुरुष प्रधानता धीरे-धीरे कम हो और परिवार व्यवस्था, समाज व्यवस्था कमजोर न हो—यह अधिक सुरक्षित मार्ग होगा।

महिलाएँ –

1. समाज में महिलाओं पर अत्याचार होता ही नहीं।
2. समाज में महिलाओं के साथ कोई भेदभाव भी नहीं होता। परिवार में महिला-पुरुष के बीच का भेदभाव एक व्यवस्था थी, न कि विकृति।
3. पति-पत्नी के बीच पति को हमेशा आक्रामक तथा पत्नी को आकर्षक होना चाहिए।
4. समाज में महिला या पुरुष अलग-अलग होते ही नहीं। उनका अलग संगठन बनना ही बिल्कुल गलत है। संपूर्ण भारत में कुल मिलाकर दो-चार लाख ही महिलाएँ या पुरुष होंगे।
5. दहेज को एक समस्या बताना राजनेताओं का स्वार्थ मात्र है। दहेज कोई समस्या नहीं है, न उसका कोई अस्तित्व है।
6. कन्या भ्रूण हत्या रोकने का प्रयत्न एक व्यर्थ की कसरत है। यहाँ तक कि अनेक नासमझ धर्मगुरु भी कन्या भ्रूण हत्या रोकने की सलाह देते हैं।
7. जंतर-मंतर पर बलात्कार के विरुद्ध आंदोलन करने वाली महिलाओं को भारत के पंचानवें प्रतिशत परिवारों की महिलाओं का कोई समर्थन नहीं था।
8. भारत में स्वतंत्रता के बाद महिला सशक्तिकरण के जो भी कानून बने, वे समाधान न होकर समस्या पैदा करने वाले अधिक हैं। ये सभी कानून समाज-तोड़क हैं। ये सभी कानून पश्चिम की नकल हैं।
9. बाल विवाह का विरोध एक गलत कार्य है। बाल विवाह पर प्रतिबंध समस्याएँ पैदा करता है, न कि समाधान।
10. तलाक संबंधी कानून हटा लेना चाहिए।
11. परिवार में महिलाओं के संपत्ति संबंधी बनाए गए अब तक के कानून बुरी नीयत से बनाए गए।
12. प्रेम विवाहों को प्रोत्साहन देना गलत कार्य है।
13. हिन्दू कोड बिल भारतीय विधायिका के लिए एक कलंक है।
14. महिला और पुरुष आग और बारूद के समान हैं। इनके बीच दूरी घटने से बलात्कार का खतरा बढ़ेगा तथा दूरी बढ़ने से सृजन रुकेगा।
15. वैश्यालयों को बिल्कुल फ्री कर देना भी बलात्कार की रोकथाम में सहायक है।
16. बलात्कार संबंधी नब्बे प्रतिशत कानून अनावश्यक तथा अव्यवस्था पैदा करने वाले हैं।
17. परिवार के किसी सदस्य को परिवार में रहते हुए भी अपने मौलिक अधिकार तो होते हैं, किन्तु संवैधानिक या सामाजिक अधिकार सामूहिक ही हो सकते हैं, अलग-अलग नहीं। परिवार के सदस्यों को अलग-अलग कानूनी या सामाजिक अधिकार देना समाज-तोड़क कार्य है, घातक है।
18. दो प्रतिशत महिलाएँ ही आधुनिक होती हैं, खुले समाज का आचरण करती हैं। शेष 98 प्रतिशत पारंपरिक परिवारों से होती हैं, बंद समाज का आचरण करती हैं। खुले समाज की महिलाओं की अपेक्षा बंद समाज की महिलाओं के आचरण का औसत बहुत अच्छा होता है। खुले समाज की महिलाओं के परिवारों में पारिवारिक टूटन, तलाक आदि भी बंद समाज की महिलाओं की अपेक्षा अधिक होता है।
19. महिला और पुरुष के आपसी संबंधों की सीमाएँ वे स्वयं तय करते हैं या वे परिवार जिनके वे सदस्य हैं। कानून इसमें कोई दखल नहीं दे सकता।
20. स्त्री और पुरुष के बीच में दूरी घटनी है या बढ़नी है—इसका निर्णय परिवार करेगा, कोई कानून नहीं।
21. यौन शोषण को बहुत अधिक संवेदनशील बनाना घातक है। इसमें समाज की अपनी संरचना, विशेषकर पारिवारिक संरचना टूटेगी। बंद समाज और खुले समाज में होने वाले यौन अपराधों का मापदंड अलग-अलग होना चाहिए। बंद समाज में किया जाने वाला यौन अपराध खुले समाज में होने वाले वैसे ही अपराध की अपेक्षा अधिक कठोर दंडनीय होना चाहिए। बलात्कार के अतिरिक्त यौन शोषण तो बिल्कुल ही साधारण अपराध होता है।
22. बलात्कार एक अपराध है। कुछ विशेष घटनाओं को छोड़कर बलात्कार उतना गंभीर अपराध नहीं है जितना डकैती। बलात्कार स्वयं में एक छोटा अपराध है, जिसे अनावश्यक इतना बड़ा बना दिया गया है। बलात्कार के लिए जब तक कोई अन्य गंभीर अपराध न जुड़ा हो, तब तक पाँच वर्ष से कम ही सजा पर्याप्त है।
23. महिला आरक्षण अन्य आरक्षणों की अपेक्षा कई गुना अधिक घातक है। समाज-तोड़क तो है ही, परिवार-तोड़क भी है। राजनीतिक षड्यंत्र है। नासमझ सामाजिक विद्वान या धर्मगुरु ही महिला आरक्षण का समर्थन करते हैं। महिला आरक्षण को तत्काल पूरी तरह समाप्त कर देना चाहिए।

महिला वर्ग या परिवार का अंग

दुनिया में मुख्य रूप से चार संस्कृतियों के लोग रहते हैं—
1.पाश्चात्य या ईसाई
2.इस्लाम
3.साम्यवादी या अनीश्वरवादी
4.भारतीय या हिन्दू

पाश्चात्य में व्यक्ति सर्वोच्च होता है, परिवार, धर्म, समाज, राष्ट्र गौण। इस्लामिक संस्कृति में धर्म सर्वोच्च होता है, परिवार, समाज, व्यक्ति, राष्ट्र गौण। साम्यवाद में राज्य सर्वोच्च होता है, व्यक्ति, परिवार, धर्म, समाज, राष्ट्र गौण। भारतीय संस्कृति में समाज सर्वोच्च होता है, व्यक्ति, धर्म, राष्ट्र गौण। यदि हम वर्तमान स्थिति की तुलना करें तो पश्चिम, इस्लाम और साम्यवाद अपनी-अपनी संस्कृतियों पर टिके हुए हैं, किन्तु भारत पूरी तरह अपनी संस्कृति को छोड़ता ही जा रहा है। साथ ही अन्य तीन संस्कृतियों की प्रतिस्पर्धा में अपनी सांस्कृतिक पहचान खो रहा है, अर्थात समाज से भी ऊपर धर्म, राष्ट्र या व्यक्ति को मानने लगा है।

प्राकृतिक रूप से कोई भी दो व्यक्ति पूरी तरह समान नहीं होते, किन्तु महिला और पुरुष के बीच तो यह दूरी बहुत अधिक है। अब तक प्रकृति के अनेक रहस्य सुलझने बाकी हैं। उसी तरह यह भी एक रहस्य ही है कि प्राकृतिक रूप से महिला और पुरुष के बीच स्वाभाविक आकर्षण है, जो इन दोनों को एक-दूसरे के साथ रहने के लिए मजबूर करता है। इस आकर्षण को किसी परिस्थिति में रोकना या बाधा पहुँचाना बहुत घातक कार्य है। किन्तु इस आकर्षण को यदि व्यवस्थित नहीं किया गया तो समाज में अव्यवस्था फैल जाएगी। इसलिए परिवार रूपी एक इकाई बनाकर बीच का रास्ता निकाला गया, जिसमें महिला और पुरुष की प्राकृतिक आवश्यकता पूरी होती रहे, किन्तु अव्यवस्था भी न फैले।

आदर्श स्थिति में व्यक्ति और समाज को मौलिक इकाई माना जाता है। न तो व्यक्ति से नीचे कोई इकाई है, न ही समाज से ऊपर। व्यक्ति और समाज के बीच आपसी तालमेल बनाए रखने के लिए एक सीढ़ी का उपयोग होता है, जो परिवार, गाँव, जिला, प्रदेश और राष्ट्र से होती हुई समाज तक जाती है। यह सीढ़ी व्यक्ति को समाज से संपर्क रखने का काम करती है। इसी तरह समाज द्वारा निर्मित सरकार रूपी एक इकाई होती है, जो सबसे ऊपर होती है और व्यक्ति को नियंत्रित करने के लिए यह सीढ़ी राज्य के काम आती है। इस तरह यह सीढ़ी ही व्यक्ति से समाज तक और सरकार से व्यक्ति तक के संपर्क का माध्यम होती है।

व्यक्ति के बाद पहली सीढ़ी परिवार होती है। परिवार एक से अधिक व्यक्तियों को मिलाकर बनता है। सामान्यतः उसमें पुरुष और महिलाएँ दोनों प्रकार के लोग शामिल होते हैं। परिवार स्वयं में एक संगठन होता है। कोई व्यक्ति जब किसी परिवार का सदस्य होता है तो स्वाभाविक रूप से उसका परिवार के प्रति संपूर्ण समर्पण होता है, जिसमें वह स्वयं भी बराबर का सहभागी होता है। परिवार में शामिल होने के बाद व्यक्ति के संवैधानिक अथवा सामाजिक अधिकार समाप्त होकर परिवार के साथ जुड़ जाया करते हैं। परिवार में रहते हुए व्यक्ति की पहचान उसी तरह होती है, जिस तरह शक्कर और पानी मिलकर शर्बत बन जाते हैं अथवा ऑक्सीजन और हाइड्रोजन मिलकर पानी बन जाते हैं। स्वाभाविक है कि दोनों का अलग-अलग अस्तित्व तब तक शून्य हो जाता है, जब तक दोनों को अलग-अलग न कर दिया जाए। परिवार एक तीन पैर की दौड़ मानी जाती है, जिसमें परिवार के सदस्यों का एक-एक पैर खुला रहता है और बीच का पैर बँधा हुआ। स्वाभाविक है कि तीन पैर की दौड़ में कोई भी एक सदस्य यदि तालमेल से अलग हुआ या कर दिया गया, तो दौड़ने वाला निश्चित रूप से प्रतिस्पर्धा में पिछड़ जाएगा। वर्तमान समय में हम परिणाम देख रहे हैं कि तालमेल के मामले में इस्लाम सबसे सफल है और साम्यवाद सबसे पीछे। पाश्चात्य संस्कृति में भी तालमेल का अभाव ही है और वर्तमान भारतीय संस्कृति को तो कभी पृथक संस्कृति माना ही नहीं जा रहा।

यदि हम परिवार व्यवस्था के आधार पर आकलन करें तो मुस्लिम संस्कृति और हिन्दू संस्कृति के बीच बहुत एकता है, जबकि पाश्चात्य संस्कृति और साम्यवादी संस्कृति के बीच भी बहुत सीमा तक एकता है। ये दोनों संस्कृतियाँ मिलकर भारतीय और इस्लामिक परिवार व्यवस्था को किसी भी तरह तोड़ना चाहती हैं। इस टूटन का ही प्रयोग स्थल भारत बना हुआ है। स्वाभाविक है कि परिवार व्यवस्था को छिन्न-भिन्न करने के लिए महिला और पुरुष के बीच अविश्वास की दीवार खड़ी करनी आवश्यक है। यदि तीन पैर की दौड़ से एक सदस्य के मन में संदेह के बीज बो दिए जाएँ, तो परिणामस्वरूप पाश्चात्य और साम्यवादी संस्कृति अपने प्रतिस्पर्धी को पराजित कर सकती हैं। इसी बुरी नीयत को आधार बनाकर भारत में इन दोनों संस्कृतियों के एजेंट सफलतापूर्वक यह धारणा फैला रहे हैं कि महिला एक पृथक वर्ग है, संयुक्त परिवार की सदस्य नहीं। निरंतर यह बात फैलाई जा रही है कि पुरुष शोषक है और महिला शोषित। यह बात भी सब लोग जानते हैं कि महिला और पुरुष को एकाकार होना एक प्राकृतिक अनिवार्यता है। यदि किसी बालिग महिला को पुरुष के साथ जुड़ने से रोक दिया जाए, तो वह महिला भी उतना ही विद्रोह करती है जितना पुरुष, किन्तु थोड़े ही दिनों बाद पाश्चात्य और साम्यवादी प्रचार से प्रभावित उस परिवार के पति-पत्नी के बीच शोषक और शोषित की दीवार खड़ी कर दी जाती है। यह समाज व्यवस्था के लिए बहुत घातक है, किन्तु भारत में सामाजिक कार्य समझकर किया जा रहा है। कुछ लोग वर्ग विद्वेष बढ़ा रहे हैं, तो कुछ लोग नासमझी में वर्ग समन्वय की बात कर रहे हैं, जबकि सच्चाई यह है कि महिला और पुरुष अलग वर्ग हैं ही नहीं। नरेंद्र मोदी समेत हर राजनेता महिला सशक्तिकरण जैसे समाज-विरोधी नारे को जोर-शोर से हवा दे रहे हैं। “बेटी बचाओ” जैसे शब्दों का धड़ल्ले से उपयोग हो रहा है। महिलाओं को कानून तोड़ने की ट्रेनिंग दी जा रही है। लगभग सिद्ध कर दिया गया है कि पुरुष शोषक है और महिला शोषित। न्यायालयों में भी कुछ मामलों में महिलाओं को सत्यवादी माना जाने लगा है। एक जमाना था जब इस्लाम महिलाओं को आधी गवाही का हकदार मानता था, तो अब नए जमाने में उन्हें दोगुना विश्वसनीय बताया जाने लगा है। न इस्लामिक मान्यता ठीक थी, न ही वर्तमान मान्यता ठीक है, क्योंकि किसी भी समूह में अच्छे और बुरे लोगों का प्रतिशत लगभग बराबर होता है, कम-ज्यादा नहीं। किन्तु संपूर्ण भारत में यह षड्यंत्र निरंतर चल रहा है। भारत में दो प्रतिशत आधुनिक महिलाएँ 98 प्रतिशत पारंपरिक परिवारों की महिलाओं को ब्लैकमेल कर रही हैं।

इन दो प्रतिशत का व्यक्तिगत और पारिवारिक जीवन भी कुछ भिन्न होता है। ये महिलाएँ या तो अपने परिवार के संरक्षण में शेष परिवारों का आरक्षण के नाम पर या प्रगतिशीलता के नाम पर शोषण करती हैं, ब्लैकमेल करती हैं, अथवा अपने परिवार में तलाक का गाजर-मूली की तरह उपयोग करती हैं। किसी भी प्रकार का महिला सशक्तिकरण अथवा महिला आरक्षण या तो परिवार या समाज व्यवस्था में विखंडन पैदा करता है अथवा शोषण। संसद में और सरकारी कार्यालयों में ये महिलाएँ एक साथ बैठ सकती हैं, किन्तु रेल डिब्बों में या अस्पतालों में इन्हें खतरा महसूस होता है। सेना में लड़ने के लिए अब बहादुरी की अपेक्षा महिला होने को भी महत्व दिया जाएगा। पंचायतों में भी अब महिलाओं को आरक्षण मिलेगा। मैं अभी तक नहीं समझा कि महिला और पुरुष की दूरी घटना इतना खतरनाक है, तो संसद, पंचायत, सरकारी कार्यालयों और सेना-पुलिस में यह दूरी प्रयत्नपूर्वक क्यों घटाई जा रही है। आए दिन देखा जा रहा है कि अपराधी प्रवृत्ति की महिलाएँ खुलेआम पुलिस वालों के समक्ष अपराध कर रही हैं। मुख्यमंत्री और मंत्री पद पर आसीन महिलाएँ भी जब चाहे तब किसी पुरुष के विरुद्ध आरोप लगा देती हैं। मैंने तो यहाँ तक देखा है कि अधिकांश महिला लेखक घुमा-फिराकर महिला सशक्तिकरण के लिए ही लेख लिखती हैं। उन्हें इसके अतिरिक्त कोई समस्या दिखती ही नहीं। अनेक महिलाएँ जो विवाह के पूर्व भी महिला सशक्तिकरण की पक्षधर रही हैं, वे भी विवाह करने से अथवा गुप्त रूप से पुरुषों के साथ संपर्क बनाने से दूरी नहीं बनातीं। संपूर्ण समाज में एक प्रचलन है कि विवाह के समय लड़का अधिक योग्य और लड़की कम योग्य के बीच तालमेल बनाया जाता है। ये दो प्रतिशत महिला सशक्तिकरण का ढोंग करने वाली महिलाएँ भी अपनी लड़कियों के विवाह के लिए अधिक योग्य लड़का ही खोजती हैं और लड़की को पति परिवार में जाने देती हैं। जब आपको स्वयं पता है कि इसका परिणाम पुरुष प्रधानता में ही है, तो क्या यह उचित नहीं होता कि कम से कम आप तो अपनी लड़की का विवाह कम योग्य लड़के से करतीं और लड़के को अपने घर में लाकर रखतीं। विवाह करते समय भारतीय संस्कृति का पोषण और विवाह के बाद पाश्चात्य संस्कृति के आधार पर विखंडन की दोहरी नीति बहुत घातक है।

महिला और पुरुष को दो वर्गों के रूप में खड़ा किया जा चुका है। वर्ग विद्वेष और वर्ग संघर्ष की दिशा में महिलाओं को निरंतर प्रोत्साहित किया जा रहा है। नासमझ धर्मगुरु कन्या बचाओ, महिला बचाओ का नारा लगा रहे हैं और 98 प्रतिशत पारंपरिक परिवारों के लोग किंकर्तव्यविमूढ़ हैं। समझ में नहीं आ रहा कि क्या करें। गाँव-गाँव में समाज-तोड़क राजनेताओं के एजेंट महिलाओं को छोटे-छोटे पद देकर महिला-पुरुष के बीच टकराव की पृष्ठभूमि बना रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में हम इस बाढ़ को रोक नहीं सकते, यह तो पता है, किन्तु फिर भी हम समाज को सतर्क तो कर सकते हैं कि ऐसे समाज-तोड़क लोगों से सावधान रहें। मेरा आपसे निवेदन है कि आप जब तक मजबूर न हों या कोई स्वार्थ न हो, तब तक महिला और पुरुष को परिवार का अभिन्न अंग ही बने रहने दें। उन्हें पृथक वर्ग के रूप में खड़ा करके अपने पैरों में कुल्हाड़ी मत मारें।

महिला-पुरुष के बीच दूरी घटना उचित है या बढ़ना

(1) विचारः—महिला और पुरुष के बीच दूरी घटाने या बढ़ाने का निर्णय करने का अधिकार उनका व्यक्तिगत निर्णय होता है। समाज अथवा सरकार इस संबंध में कोई निर्णय नहीं कर सकते हैं। समाज या सरकार सलाह मात्र दे सकते हैं, कानून नहीं बन सकता।

(2) विचारः—परिवार एक संगठन होता है, जिसमें प्रत्येक सदस्य का संपूर्ण समर्पण होता है। स्त्री और पुरुष के बीच दूरी घटाने या बढ़ाने का अंतिम निर्णय करने का अधिकार सिर्फ परिवार का हो सकता है, किसी अन्य का नहीं।

(3) विचारः—पुरुष और महिला के संबंधों की तुलना आग और बारूद से की जाती है। यदि दूरी घटेगी तो विस्फोट का खतरा बढ़ेगा, यदि बढ़ेगी तो सृजन रुकेगा।

(4) विचारः—महिला सशक्तिकरण एक घातक विचार है। यह बुद्धिजीवियों का एक सुनियोजित षड्यंत्र है। परिवार सशक्तिकरण उपयुक्त है।

(5) विचारः—विवाह के बाद महिला का पति परिवार में जाना स्वयंमेव पुरुष सशक्तिकरण है। लड़की से अधिक उम्र तथा योग्यता का लड़का खोजना पुरुष सशक्तिकरण है और लड़के से अधिक योग्य लड़की से विवाह महिला सशक्तिकरण है। महिला सशक्तिकरण के लिए पुरुष को महिला परिवार में जाने की प्रथा विकसित करनी होगी।

(6) विचारः—महिला-पुरुष का लिंगानुपात बिगड़ना महिला सशक्तिकरण में सहायक है। इस बिगड़ते अनुपात में हस्तक्षेप घातक होगा। महिला संख्या वृद्धि के प्रयत्न बेकार की कसरत है।

(7) विचारः—समाज व्यवस्था का एक मान्य सिद्धांत है कि पति-पत्नी के अतिरिक्त बालिग स्त्री-पुरुष के बीच दूरी घटना घातक होती है—भाई-बहन के बीच भी, माँ-बेटे के बीच भी।

(8) विचारः—पति-पत्नी के व्यक्तिगत संबंधों में पति हमेशा आक्रामक तथा पत्नी को आकर्षक होना चाहिए।

(9) विचारः—स्वतंत्रता के बाद महिला-पुरुष के बीच दूरी घटने या बढ़ने के विषय में बने सभी कानून उलझाने वाले हैं। एक तरफ तो दूरी घटाकर विस्फोट को आमंत्रित कर रहे हैं, तो दूसरी ओर बार बालाओं पर रोक, ब्लू फिल्म रोक आदि का भी नाटक चलता रहता है।

(10) जो व्यक्ति किसी परिवार का सदस्य न होकर अकेला है, वही अपनी स्वतंत्र पहचान रख सकता है। इस तरह भारत में कुल मिलाकर पुरुष या महिलाओं की संख्या लाख-दो लाख से अधिक नहीं होगी।

(11) विचारः—पति-पत्नी के एक साथ रहते हुए उनके बीच अविश्वास का विस्तार घातक परिणाम देता है। भविष्य में आपके बच्चे कैसे पैदा होंगे और बच्चों के संस्कार कैसे होंगे।

प्रश्नोत्तर

(1) आचार्य पंकज वाराणसी

प्रश्न—आप जब भी लिखते हैं तो महिलाओं के विरुद्ध ही रहते हैं, इसका क्या कारण है?

उत्तर—मैं हमेशा महिलाओं के विरुद्ध रहता हूँ, यह बात अर्द्धसत्य है। आचार्य जी को यह बात अच्छी तरह जानकारी है कि हमारी आंतरिक परिवार व्यवस्था में प्रत्येक सदस्य को समान अधिकार प्राप्त है। हमारा परिवार न परंपरागत व्यवस्था से चलता है, न ही आधुनिक अथवा कानूनी व्यवस्था से, बल्कि हमारा परिवार पूरी तरह लोकतांत्रिक व्यवस्था से संचालित होता है। इस परिवार में प्रत्येक सदस्य को संपूर्ण संपत्ति पर समान रूप से सामूहिक अधिकार प्राप्त है। इसमें महिला, पुरुष, बालक, वृद्ध का कोई भेद नहीं है। हमारे परिवार में प्रमुख का चयन भी लोकतांत्रिक तरीके से होता है तथा परिवार की बैठक में सभी सदस्यों को समान रूप से अपनी बात रखने का अधिकार प्राप्त है। हमारे परिवार के किसी भी सदस्य को किसी भी समय अपना हिस्सा लेकर परिवार छोड़ने की स्वतंत्रता है, चाहे वह महिला हो या पुरुष। इसी तरह परिवार में अनुशासन का भी कठोरता से पालन होता है और किसी भी सदस्य को कभी भी उसका हिस्सा देकर परिवार से हटाया जा सकता है।

यह बात सही है कि मैं महिलाओं को समान अधिकार देने का पक्षधर हूँ और विशेष अधिकार देने के विरुद्ध। मुझे पूरा विश्वास है कि यदि परिवार के प्रत्येक सदस्य को समान अधिकार दे दिया जाए और विशेष अधिकार हटा लिए जाएँ, तो परिवार टूटेंगे नहीं। हमारा परिवार हो सकता है भारत में अकेला लोकतांत्रिक परिवार हो, किन्तु 70 वर्षों से लोकतांत्रिक तरीके से सफलतापूर्वक चल रहा है। इसलिए मैं यह कह सकता हूँ कि किसी को भी सशक्त करना समानता के विरुद्ध है, घातक है तथा इसका विरोध किया जाना चाहिए।

भारत के राजनेता दो भागों में बँटकर आपस में टकराव का नाटक करते रहते हैं। एक परंपरागत हो जाता है तो दूसरा आधुनिक। एक महिला स्वतंत्रता की बात करता है तो दूसरा वेश्याओं और बार-बालाओं तक पर प्रतिबंध लगाता है। एक कन्या बचाओ की बात करता है तो दूसरा महिला सशक्तिकरण की बात करता है। एक महिलाओं के लिए अलग थाने, अस्पताल, रेल डिब्बे की बात करता है तो दूसरा सह-शिक्षा, एक साथ सरकारी नौकरी, एक साथ राजनीति की बात करता है। मैं देखता हूँ कि दिल्ली में सरकार की तरफ से बोर्ड लगा है, जिसमें लिखा है कि महिलाओं पर अत्याचार कानूनन अपराध है। प्रश्न उठता है कि क्या समाज में किसी पर अत्याचार की छूट प्राप्त है? यदि नहीं, तो फिर "महिला" शब्द की आवश्यकता क्या है। ये कहते हैं कि कन्या भ्रूण हत्या को रोका जाए—सब जानते हैं कि बालकों की भ्रूण हत्या आमतौर पर नहीं होती। फिर भ्रूण हत्या को ही क्यों न रोक दिया जाए—उसमें "कन्या" शब्द क्यों? स्पष्ट है कि राजनीति का उद्देश्य वर्ग संघर्ष को विस्तार देना है। आवश्यक है कि पति-पत्नी के बीच भी अविश्वास की दीवार खड़ी की जाए और इसके लिए महिला सशक्तिकरण, कन्या भ्रूण हत्या नियंत्रण, बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ जैसे समाज-तोड़क, परिवार-तोड़क नारे बहुत उपयोगी होते हैं। यदि महिलाओं को भी समान अधिकार की बात करना महिला-विरोधी कार्य है, तो मैं इस आरोप से सहमत हूँ।

2. मनोज द्विवेदी जी, ऋषिकेश

प्रश्न—परंपरागत परिवार और आधुनिक परिवार की तुलना में लोकतांत्रिक परिवार कैसा होता है? तीन पैर की दौड़ से आपका आशय क्या है?

उत्तर—परंपरागत परिवार व्यवस्था में परिवार का मुखिया जन्म से ही बन जाता है, जबकि आधुनिक परिवार व्यवस्था में कोई मुखिया होता ही नहीं। परंपरागत परिवार व्यवस्था में घुटन होती है, तो आधुनिक परिवार व्यवस्था में टूटन। परंपरागत परिवार व्यवस्था में शासन होता है, तो आधुनिक में उच्छृंखलता। लोकतांत्रिक परिवार व्यवस्था में न घुटन होती है, न टूटन होती है। ऐसी व्यवस्था में शासन या उच्छृंखलता की जगह अनुशासन होता है। ऐसी परिवार व्यवस्था में कानूनी हस्तक्षेप भी न के बराबर होता है। मैं सहमत हूँ कि परिवार एक संगठनात्मक इकाई है, प्राकृतिक इकाई नहीं। हमारे संविधान निर्माताओं ने नासमझी में परिवार को प्राकृतिक इकाई मान लिया। अब इसे ठीक करने की जरूरत है।

तीन पैर की दौड़ का आशय यह है कि सामान्यतः परिवार एक स्त्री और पुरुष का मिलाजुला संगम होता है। प्रत्येक परिवार अन्य परिवारों से प्रतिस्पर्धारत होता है। इस प्रतिस्पर्धा में परिवार के प्रत्येक सदस्य की अपनी क्षमतानुसार सहभागिता होती है। परिवार के लोग ही अपने सदस्यों की क्षमता देखकर उसकी सक्रियता का निर्धारण करते हैं। प्रतिस्पर्धारत अन्य लोगों में से कुछ को ऐसी व्यवस्था से जलन होती है और वे सफलतापूर्वक चल रही परिवार व्यवस्था को छिन्न-भिन्न करने

के लिए परिवार के सदस्यों को इधर-उधर की बातें करके असंतोष पैदा करते हैं। महिला सशक्तिकरण इसी प्रकार का परिवार-तोड़क नारा है। प्रत्येक व्यक्ति को समान अधिकार प्राप्त है, तब किसी व्यक्ति को विशेष अधिकार देने की बात करना समाजद्रोह माना जाना चाहिए। दुर्भाग्य से आज ऐसे नारों को सामाजिक कार्यों के साथ जोड़ा जा रहा है।

3. प्रश्नः—अखबारों में समाचार छपा है कि उत्तर प्रदेश के एक गाँव में अकाल की आशंका को देखते हुए पंचायत के पुरुषों ने गाँव की एक महिला को दंड स्वरूप हल में जोत दिया। महाराष्ट्र की एक महिला का चित्र टी.वी. में दिखा, जिसमें एक महिला हल जोत रही है। स्वतंत्रता के सत्तर वर्ष बाद भी महिलाओं के साथ ऐसा अत्याचार क्यों? क्या महिलाएँ समाज का अंग नहीं? आप भी अपने विचार व्यक्त करें।

उत्तरः—अखबारों का समाचार तो मैंने नहीं पढ़ा, किन्तु टी.वी. का चित्र देखा है। पूरे भारत में खेती करते समय आमतौर पर पुरुष ही हल जोतते हैं। सामाजिक तौर पर महिलाओं के हल जोतने पर रोक लगी हुई है। यदि किसी परिवार की महिला हल जोतने के लिए मजबूर है, तो यह पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था में पुरुष की अकर्मण्यता मानी जाती है, जिसे कोई पुरुष स्वीकार नहीं कर सकता। प्रश्न उठता है कि महिला का हल जोतना महिला समानता है या अत्याचार?

प्राचीन समय से चली आ रही समाज व्यवस्था में वह अत्याचार है और नव-निर्माणाधीन व्यवस्था में समानता। यदि भारत की महिलाओं को आधुनिक व्यवस्था पर चलना है, तो हल जोतना उनका अधिकार भी है और दायित्व भी। मैं देख रहा हूँ कि संपूर्ण भारत में महिला अत्याचार की आवाज उठाना अब एक तो फैशन बन रहा था और अब पेशा। किसी परिवार ने महिला को हल जोतने से रोक दिया तो महिला उत्पीड़न और हल जोतने को बाध्य किया तब भी उत्पीड़न। हमें सबसे पहले तो यह तय करना होगा कि महिला स्वयं में समाज की इकाई है, या परिवार की, या व्यक्ति के रूप में? भारत में त्रिस्तरीय समाज व्यवस्था—(1) व्यक्ति (2) परिवार (3) समाज। इस त्रिस्तरीय व्यवस्था में महिला कहाँ खड़ा होना चाहती है। एक बहू को सास ने पीटा तो महिला अत्याचार, और बहू ने सास को घर से निकाला तब क्या?

इस संबंध में मुझे विस्तृत अनुभव है कि समाज में जो स्वजीवी लोग हैं, वे ऐसी चर्चाओं को कम महत्व देते हैं और परजीवी लोग बात को बतंगड़ बनाते हैं। जो बेचारा दिन भर हल जोतता है या व्यापार करता है, उसे न तो इतना समय है, न ही जानकारी। किन्तु जो परजीवी हैं, उनकी रोजी-रोटी तो इन स्वजीवियों से ही आराम से चलती है। ये धूर्त परजीवी दिन-रात समाज की चिंता में दुबले होते रहते हैं, क्योंकि यही चिंता तो उनका व्यवसाय है। लगातार समाज सेवा के नाम पर नई-नई तिकड़म के मार्ग खोजे जा रहे हैं। हम किसी भी सामाजिक विषय पर चर्चा करने के पूर्व अवश्य देख लें कि चर्चा करने वाला यदि पेशेवर समाजसेवी होगा, तो वह समस्या को सुलझाने की अपेक्षा उलझाने में अधिक सक्रिय होगा।

4. आचार्य पंकज, श्री नेपाली क्षेत्र लक्ष्मण झूला मार्ग, ऋषिकेश, उत्तराखंड

समीक्षाः—नवंबर 2009 की शुरुआत में देवबंद में आयोजित जमीयत उलेमा-ए-हिन्द की कॉन्फ्रेंस कई कारणों से चर्चा में रही, लेकिन जिस महत्वपूर्ण सवाल पर चर्चा कम हुई, वह है इस कॉन्फ्रेंस द्वारा महिलाओं के 33 प्रतिशत आरक्षण का विरोध और दस साल से बड़ी बच्चियों की आगे पढ़ाई पर शरीयत की कड़ी शर्तों का थोपा जाना। जमीयत के प्रस्ताव से महिलाओं के लिए दोयम दर्जे की भाषा साफ झलकती है। प्रस्ताव में कहा गया है कि महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत आरक्षण अनावश्यक है और इसे कबूल नहीं किया जा सकता। इसकी वजह यह बताई गई है कि आरक्षण से महिलाएँ मुख्यधारा में आ जाएँगी, उसके चलते उनकी सुरक्षा के साथ-साथ दूसरी सामाजिक समस्याएँ भी उठ खड़ी होंगी। जमीयत मुस्लिम मर्दों के लिए तो आरक्षण चाहता है, लेकिन महिलाओं को इससे दूर रखने का प्रस्ताव पारित कर जमीयत ने यह साफ जता दिया है कि सुरक्षा के बहाने यह मुस्लिम महिलाओं की सार्वजनिक उपस्थिति नहीं चाहता है। यहाँ यह याद दिलाना उचित होगा कि सुरक्षा का हवाला देकर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ भी महिलाओं को राजनीतिक, सामाजिक सक्रियता से दूर रखने की वकालत करता रहा है। 1925 ई. से पुरुष सेवक ही शाखाओं में जाते हैं।

जमीनी हकीकत यह है कि मुस्लिम महिलाओं की अक्सरियत के हालात दलित महिलाओं जैसे ही बदतर हैं। तजुर्बा यह बताता है कि महिलाएँ तब कहीं ज्यादा असुरक्षित होती हैं, जब उनकी मौजूदगी और उनकी आवाज को सार्वजनिक मंचों पर पहुँचने से रोका जाता है। वरना समाज क्या, परिवार में भी उनके साथ ज्यादती और हिंसा होती है, लेकिन उस पर पर्दा पड़ा रहता है। यह बड़े अफसोस की बात है कि मुसलमानों की मसीहा कहलाने वाली जमातें, मुस्लिम महिलाओं की तरक्की, सेहत, पढ़ाई, रोजगार जैसे सवालों पर तो चुप्पी साधे रहती हैं, लेकिन उन्हें जब भी मौका मिलता है, तो पहले से ही दरकिनार मुस्लिम महिलाओं को और भी पीछे धकेलने के लिए अपनी आवाज बुलंद करने लगती हैं। मुस्लिम लड़कियाँ जो समाज की चारदीवारी तोड़कर अपनी हिम्मत और योग्यता के बूते पर बाहर आई हैं, पढ़ाई के मैदान में आगे पढ़ने की जद्दोजहद कर रही हैं, डॉक्टर, इंजीनियर बन रही हैं—इनकी पढ़ाई पर शरीयत के नाम पर तरह-तरह की पाबंदी लगाना शर्मनाक है। जमीयत का प्रस्ताव है कि दस साल से बड़ी बच्चियों को आगे की पढ़ाई जारी रखने के लिए शरीयत की शर्तों का पालन करना चाहिए। मुस्लिम लड़कियों को पढ़ाई-लिखाई के जरिये आगे बढ़ाने का हौसला देने के बजाय जमीयत का प्रस्ताव इन लड़कियों को रोशनी से अंधेरे की तरफ ले जाने का काम कर रहा है। इस प्रस्ताव में यह खतरा निहित है कि मुस्लिम लड़कियों के लिए उच्च शिक्षा के अवसर सीमित हो जाएँगे। यह मुस्लिम महिलाओं को कैद और काबू में रखने का

आजमाया हुआ हथियार है।

कांग्रेस, सपा, बसपा, राजद जैसी पार्टियाँ मुस्लिम समुदाय को वोट बैंक की तरह इस्तेमाल करती हैं, लेकिन जब भी मुस्लिम महिलाओं के हक-हकूक की बात उठती है, मुस्लिम महिलाओं को समान अधिकार देने का सवाल उठता है, तब बड़ी-बड़ी बातें करने वाले ये सियासतदान चुप्पी साध लेते हैं। ऐसे में होना तो यह चाहिए कि अपना संवैधानिक दायित्व निभाते हुए केंद्र और सूबे की सरकार यह ऐलान करे कि चाहे खाप पंचायतें हों या जमीयत जैसे सामुदायिक संगठन—इनको संस्कृति की हिफाजत के नाम पर असंवैधानिक पाबंदियाँ लगाने का कोई हक नहीं है।

मेरी दृष्टि में जब तक भारत में "समान नागरिक संहिता" को वैधानिक रूप से बाध्यकारी नहीं बनाया जाएगा, तब तक देश प्रतिक्षण टूटता रहेगा। संविधान में "समान नागरिक संहिता" लागू करने का उल्लेख है। बासठ वर्ष बीत गए, उसे लागू करने में देश के सभी राजनीतिक दलों की नानी मर जाती है।

उत्तरः— इस्लाम में महिलाओं को समान अधिकार प्राप्त नहीं हैं, जो समाज के लिए घातक है—इस बात से मैं सहमत हूँ। दस साल से अधिक उम्र की बच्चियों पर शरीयत थोपकर उन्हें शिक्षा से वंचित करना भी अन्याय है, क्योंकि मेरे विचार में धर्म परिवार को सलाह मात्र दे सकता है, बाध्य नहीं कर सकता। किन्तु तैंतीस प्रतिशत आरक्षण के विषय पर आपके विचारों में कुछ और मंथन की आवश्यकता है। महिला आरक्षण का विरोध इस्लामिक कठमुल्ले और साम्प्रदायिक हिन्दू संगठनों द्वारा जिस उद्देश्य से किया जा रहा है, वह उद्देश्य घातक है, किन्तु महिला आरक्षण का समर्थन भी जिस उद्देश्य से किया जा रहा है, वह भी कम घातक नहीं। महिला आरक्षण का लाभ पंचानवे प्रतिशत सक्षम परिवार उठाते हैं। शायद ही कभी अक्षम परिवार लाभ उठा पाएं। यह आरक्षण अक्षम परिवारों के पुरुषों के होने वाले संभावित लाभ के अवसर कम करके सक्षम परिवारों की महिलाओं की ओर बदल देगा। तैंतीस प्रतिशत महिला आरक्षण का मतलब है कुल महिलाओं के एक प्रतिशत से भी कम महिलाओं का सशक्तिकरण, जो पहले से ही सशक्त परिवारों को और सशक्त बनाने में सहायक होगा। आरक्षण के अभाव में कुल राजनीतिक पदों पर पंचानवे प्रतिशत परिवारों से पुरुष सदस्य चुनकर आते हैं, जो अब घटकर साठ प्रतिशत परिवारों तक केंद्रित हो जाएंगे। सरकारी नौकरियों में भी ऐसा ही होगा कि सक्षम परिवारों के पति-पत्नी दोनों फायदा उठा सकेंगे और लाभ कुछ परिवारों तक सिमट जाएगा।

आपने समान नागरिक संहिता का समर्थन किया है, मैं भी सहमत हूँ। किन्तु पिछली पुरुष प्रधान व्यवस्था के दुष्परिणामों की भरपाई कुछ नई समस्याओं को जन्म देगी। लाभ के अवसरों का विकेंद्रीकरण होना चाहिए, केंद्रीकरण नहीं। महिला आरक्षण लाभ के अवसर केंद्रित करने में सहायक होगा। महिला और पुरुष विपरीत लिंग होने से आकर्षण स्वाभाविक है। हमें यह नीतिगत निर्णय लेना होगा कि समाज इनकी दूरी कम करने का प्रयास करे या बढ़ाने का प्रयास करे या इसका निर्णय काल और परिस्थिति अनुसार परिवारों पर छोड़ दें। आरक्षण के प्रभाव से महिला सशक्तिकरण तो होगा, किन्तु दूरी घटेगी और खतरे बढ़ेंगे। यदि हम दूरी घटने के पक्षधर हैं तो बार-बालाओं पर प्रतिबंध क्यों? वेश्यालयों पर इतनी कठोरता क्यों? कोई एक प्रकार की नीति बनाई जाए या निर्णय समाज पर छोड़ दिया जाए। मेरा यह विचार है कि परिवार और समाज के निर्णयों में न राज्य कानून बनाए, न धार्मिक संगठन। परिवार और ग्राम सभाएँ बैठकर अपने आंतरिक निर्णय स्वतंत्रतापूर्वक करें। व्यक्ति, परिवार, गाँव और समाज की अपनी-अपनी अधिकारों की सीमाएँ तय हों और यदि कोई सीमा उल्लंघन करे तो राज्य हस्तक्षेप करे, जैसा कि कभी-कभी खाप पंचायतें उल्लंघन करती हैं।

महिला शिक्षा के संबंध में मुल्लाओं का हस्तक्षेप परिवार की आंतरिक व्यवस्था में हस्तक्षेप होने से निंदनीय है। उसी तरह तैंतीस प्रतिशत महिला आरक्षण भी परिवार की आंतरिक संरचना में कानूनी हस्तक्षेप होने से लाभ कम और हानि अधिक करेगा। लाभ के अवसर या तो योग्यतानुसार होना चाहिए या प्रसाद स्वरूप। यदि योग्यतानुसार अवसर की समानता है तो आरक्षण बिल्कुल अनावश्यक है, यदि प्रसाद स्वरूप है तो शत-प्रतिशत महिला आरक्षण दे देना चाहिए, जिससे ज्यादा से ज्यादा परिवारों को लाभ हों। मेरे इस सुझाव का विरोध क्यों होता है, यह सोचने का विषय है। मेरा तो मत है कि सक्षम लोगों की कूट-तिकड़मी मंशा पर चर्चा होनी चाहिए।

5. प्रश्न—क्या आप महिला आरक्षण के विरुद्ध हैं?

उत्तरः—मैं महिला आरक्षण का न समर्थक हूँ, न विरोधी। मैं विरोधी हूँ केंद्रीकरण का। मैं विरोधी हूँ सामाजिक विघटन का। तीन प्रकार का केंद्रीकरण हानिकारक होता है—

(1) सत्ता का समाज के पास से निकलकर राज्य के पास इकट्ठा होना

(2) ज्ञान का श्रमजीवियों के पास से निकलकर बुद्धिजीवियों के पास बढ़ना

(3) धन का गरीबों के पास से निकलकर पूँजीपतियों के पास बढ़ना

महिला आरक्षण की इन तीनों के समाधान में कोई भूमिका नहीं है। इसके विपरीत महिला आरक्षण व्यवस्था संसद या सरकारी नौकरी के लाभ कुछ परिवारों तक समेटने में सहायक होगा। यह अप्रत्यक्ष रूप से केंद्रीकरण है।

दूसरी बात यह है कि यह प्रावधान सम्पूर्ण समाज की परिवार व्यवस्था को कमजोर करेगा। स्त्री और पुरुष की पति-पत्नी वाली पारिवारिक भूमिका का आपसी सामंजस्य टूटेगा। पुरुष व्यवस्था का एकाधिकार और पारिवारिक एकता की टूटन में से किसी एक को चुनना उतना आसान नहीं, जितनी आसानी से नेताओं ने कर लिया। हमें ऐसे मार्ग तलाशने चाहिए कि साँप भी मरे और लाठी भी न टूटे। अर्थात् महिलाओं को समानता तो मिले, किन्तु परिवार व्यवस्था न टूटे। और कल्पना कीजिए कि ऐसा कोई फार्मूला न निकले, तो परिवार व्यवस्था को नुकसान पहुँचाने की अपेक्षा पुरुष प्रधानता को तब तक चलने दें, जब तक कोई ठीक मार्ग न निकले। वर्तमान समय में ऐसा मार्ग तो उपलब्ध है, जिसके अनुसार परिवार के प्रत्येक सदस्य को

पारिवारिक, सामाजिक व्यवस्था में समान अधिकार दे दिया जाए। परिवार की सम्पूर्ण सम्पत्ति में सबका हिस्सा तथा अधिकार बराबर हो—ऐसा निर्णय नेता लोग करेंगे नहीं, क्योंकि उनका उद्देश्य महिला सशक्तिकरण न होकर समाज में वर्ग विद्वेष को बढ़ाना है। इसलिए मैं किसी भी प्रकार के आरक्षण के विरुद्ध हूँ और इस विरोध के अंतर्गत ही महिला आरक्षण भी शामिल है।

मुझे लगता है कि आरक्षण का समर्थन करने वालों को समाजशास्त्र का ज्ञान नहीं है। आदर्श व्यवस्था यह है कि परिवार में या समाज में सबको समान अधिकार देने के बाद भी जिन्हें विशेष सहायता की आवश्यकता हो, वह सहायता अन्य सदस्यों का कर्तव्य तो होना चाहिए, किन्तु कमजोर का अधिकार नहीं। इसे हम और स्पष्ट समझें कि परिवार का एक सदस्य विशेष बीमार है। उस सदस्य की विशेष देखभाल परिवार के अन्य सदस्य करें—यह अन्य सदस्यों का कर्तव्य तो है, किन्तु दायित्व नहीं। नासमझ लोग कर्तव्य और दायित्व का अंतर नहीं समझते। दायित्व दूसरे पक्ष का अधिकार बन जाता है, जबकि कर्तव्य दूसरे पक्ष का अधिकार न बनकर अनुकंपा होता है। मैंने जब अपनी बैठकों के एजेंडे में लिखा था कि मेरी बैठकों में समानता का व्यवहार किया जाएगा, फिर भी समानता का व्यवहार मेरा कर्तव्य होगा, आपका अधिकार नहीं। मेरे ऐसा लिखने पर प्रश्न भी उठे, किन्तु मैं ठीक था। आज भी मैं कह रहा हूँ कि समानता चर्चा में सिर्फ पुरुषों को ही बैठना चाहिए, महिलाओं को नहीं, क्योंकि चर्चा दायित्व की न होकर कर्तव्य की हो रही है। यहाँ उल्टा हो रहा है। महिलाओं को समान अधिकार देने का तो प्रयत्न ही नहीं हो रहा है, उल्टे विशेष अधिकार की बात हो रही है—वह बात भी महिलाओं को साथ बिठाकर, वह भी इस रूप में कि कुल आबादी की अड़तालीस प्रतिशत महिलाओं में से पाँच लाख में से एक को साथ बिठाकर। मैं इस पूरी योजना के विरुद्ध हूँ। मेरा मत है कि संसद महिलाओं को संसद में बिठाने की अपेक्षा संसद के ही कुछ अधिकार कम करके परिवारों को सौंप दे, तो महिलाएँ संसद में आरक्षण क्यों माँगेंगी। हमारी रामानुजगंज की धर्मशाला व्यवस्था में तो महिलाओं को आरक्षण नहीं चाहिए। सच बात यह है कि लूट के माल में बँटवारे का झगड़ा है। संसद सदस्य बनना लूट का माल है। यदि अपने ही परिवार के कई लोग ले आएँ तो अच्छा है। मैंने सुझाव दिया है कि दस वर्ष के लिए संसद की सभी सीटें महिलाओं को दे दी जाएँ या यह प्रतिबंध लगे कि परिवार का एक ही व्यक्ति संसद में जाए। इस सुझाव पर तो सोनिया, ममता चुप हैं, क्योंकि ऐसा होते ही बेचारे राहुल गांधी का क्या होगा। संसद में माँ, बेटा, होने वाली बहू—सबको जाना ही चाहिए। मैं इसे घातक मानता हूँ। यही कारण है कि मैं महिला आरक्षण के प्रस्ताव पर न तो सोनिया, ममता, वृंदा करात के साथ हूँ, न ही अखिलेश, लालू, साहित्यकार राजकिशोर या मस्तराम कपूर के साथ। मैं दोनों दिशाओं को घातक मानता हूँ।

मेरा आग्रह है कि महिलाओं को समान अधिकार तत्काल दे दिया जाए और अन्य अधिकारों के लिए पुरुष वर्ग के बीच चर्चा जारी रखी जाए—तभी साँप भी मरेगा, लाठी भी बचेगी; अन्यथा साँप तो मरेगा नहीं और लाठी अवश्य टूट जाएगी।

चर्चा में सिर्फ पुरुषों को ही बैठना चाहिए, महिलाओं को नहीं, क्योंकि चर्चा दायित्व की न होकर कर्तव्य की हो रही है। यहाँ उल्टा हो रहा है। महिलाओं को समान अधिकार देने का तो प्रयत्न ही नहीं हो रहा है, उल्टे विशेष अधिकार की बात हो रही है—वह बात भी महिलाओं को साथ बिठाकर, वह भी इस रूप में कि कुल आबादी की अड़तालीस प्रतिशत महिलाओं में से पाँच लाख में से एक को साथ बिठाकर। मैं इस पूरी योजना के विरुद्ध हूँ। मेरा मत है कि संसद महिलाओं को संसद में बिठाने की अपेक्षा संसद के ही कुछ अधिकार कम करके परिवारों को सौंप दे, तो महिलाएँ संसद में आरक्षण क्यों माँगेंगी। हमारी रामानुजगंज की धर्मशाला व्यवस्था में तो महिलाओं को आरक्षण नहीं चाहिए। सच बात यह है कि लूट के माल में बँटवारे का झगड़ा है। संसद सदस्य बनना लूट का माल है। यदि अपने ही परिवार के कई लोग ले आएँ तो अच्छा है। मैंने सुझाव दिया है कि दस वर्ष के लिए संसद की सभी सीटें महिलाओं को दे दी जाएँ या यह प्रतिबंध लगे कि परिवार का एक ही व्यक्ति संसद में जाए। इस सुझाव पर तो सोनिया, ममता चुप हैं, क्योंकि ऐसा होते ही बेचारे राहुल गांधी का क्या होगा। संसद में माँ, बेटा, होने वाली बहू—सबको जाना ही चाहिए। मैं इसे घातक मानता हूँ। यही कारण है कि मैं महिला आरक्षण के प्रस्ताव पर न तो सोनिया, ममता, वृंदा करात के साथ हूँ, न ही अखिलेश, लालू, साहित्यकार राजकिशोर या मस्तराम कपूर के साथ। मैं दोनों दिशाओं को घातक मानता हूँ।
मेरा आग्रह है कि महिलाओं को समान अधिकार तत्काल दे दिया जाए और अन्य अधिकारों के लिए पुरुष वर्ग के बीच चर्चा जारी रखी जाए—तभी साँप भी मरेगा, लाठी भी बचेगी; अन्यथा साँप तो मरेगा नहीं और लाठी अवश्य टूट जाएगी।

6. श्री गिरीश मिश्र, संपादक देशबंधु, रायपुर, मई 2010

सम्पादकीय—युगों से नारी समुदाय के विरुद्ध निरंतर एक युद्ध चल रहा है। इसका दायरा इतना व्यापक है कि कोई भी महाद्वीप इससे अछूता नहीं है। सुप्रतिष्ठित पत्रिका "दि इकॉनमिस्ट" (6 मार्च 2010) के शब्दों में—"इससे धनी और गरीब, शिक्षित और निरक्षर, हिन्दू, मुस्लिम, कन्फ्यूशियस के अनुयायी और ईसाई समान रूप से प्रभावित हैं।"

धन-संपदा इसके आड़े नहीं आती। ताइवान और सिंगापुर की अर्थव्यवस्थाएँ समृद्ध एवं मुक्त हैं, फिर भी वहाँ नारी-विरोधी जंग जारी है। चीन और भारत के अंदर महिलाओं का जनसंख्या में अनुपात उन क्षेत्रों में काफी कम है, जहाँ सबसे धनी और अत्यंत पढ़े-लिखे लोग बसते हैं। हमारी राजधानी दिल्ली के समृद्धतम दक्षिणी इलाकों में प्रति एक सौ लड़कों के मुकाबले लड़कियों का अनुपात अन्य भागों की तुलना में काफी कम है। दुनिया के दो बड़े तेजी से विकसित हो रहे देशों—भारत और चीन—में लड़कों और लड़कियों का अनुपात विषम से विषमतर होता जा रहा है। चीन और उत्तर भारत में प्रति एक सौ लड़कियों के मुकाबले 120 लड़के हैं। "दि इकॉनमिस्ट" के अनुसार—"प्रकृति बतलाती है कि लड़कों के मुकाबले कुछ कम लड़कियाँ जन्म लेती हैं, क्योंकि वे शिशु रोगों की चपेट में अपेक्षाकृत जल्द आ जाती हैं, मगर इसके आधार पर भी

वर्तमान पैमाने का अंतर संभव नहीं है।" हर वर्ष करोड़ों की संख्या में लड़कियों को भ्रूण-हत्या और अगर उन्होंने जन्म ले भी लिया, तो उपेक्षा एवं तिरस्कार का शिकार बनाकर इस दुनिया से विदा कर दिया जाता है। इसे "दि इकॉनमिस्ट" ने जेंडर साइड या लैंगिक हत्या अथवा नारी मेध कहा है।

आज से दो दशक पूर्व, 1990 में, नोबेल पुरस्कार विजेता अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन ने अनुमान लगाया था कि दस करोड़ महिलाओं को हर साल लापता कर दिया जाता है। कहना न होगा कि आज यह संख्या काफी ऊँची हो गई है। हमारे अपने देश में संविधान जो भी कहे और सरकार जो भी कड़ा से कड़ा कानून बनाए, नारी-मेध थमता नजर नहीं आ रहा। इसके पीछे के कारण हैं—

(1) पुत्र को पुत्री के मुकाबले प्राथमिकता

(2) आधुनिकीकरण

पूरे भारत में महिला-पुरुष लैंगिक अनुपात असंतुलन जिस तरह बढ़ रहा है, उसने हरियाणा, पंजाब जैसे राज्यों में लड़कों के विवाह की समस्या पैदा कर दी है। रेड क्रॉस सोसाइटी के अनुसार भिवानी जिले में ही कम से कम 100 दूल्हनें बाहर से लाई गई हैं। हरियाणा के अनेक गाँवों में अविवाहितों की संख्या बढ़ती जा रही है। कई जगह गोलावट या सर्कुलर मैरिज का भी चलन शुरू हुआ है, जिसके अंतर्गत दो नौजवान एक-दूसरे की बहन से शादी करते हैं।

कहना न होगा कि महिला आरक्षण को लेकर चल रही बहस के दायरे को बढ़ाते हुए, शताब्दियों से चल रहे नारी-मेध को सदा-सदा के लिए समाप्त करने की दिशा में निर्णायक कदम बढ़ाने का फैसला करना अत्यंत आवश्यक है।

समीक्षा - आपने अपने संपादकीय के माध्यम से समाज को जो भी कुछ बताने की कोशिश की है, उसमें जानकारी की अपेक्षा प्रचार की गंध अधिक है। ऐसा लगता है कि आपने महिला और पुरुष को एक परिवार न मानकर दो वर्गों के रूप में बताने की कोशिश की है। आपने अपने संपादकीय में लिखा है कि—

(1) युगों से नारी समुदाय के विरुद्ध निरंतर एक युद्ध है

(2) यह एक प्रकार से नारी-मेध कहा जाना चाहिए

(3) सन् नब्बे में नोबेल पुरस्कार विजेता अमर्त्य सेन ने लिखा है कि दस करोड़ महिलाएँ प्रतिवर्ष लापता कर दी जाती हैं, आज तो यह संख्या काफी ऊँची हो गई है।

मैं अब तक नहीं समझ सका कि पुरुष-प्रधान सामाजिक बुराई को तिल का ताड़ बनाकर नारी-मेध या पुरुष अत्याचार के रूप में प्रचारित करने का आपका उद्देश्य क्या है? यदि युगों से नारी के विरुद्ध युद्ध चल रहा है, तो इस युद्ध में युगों के बाद भी अनुपात में इतना कम फर्क क्यों चल रहा है? इस युद्ध में महिलाओं ने कहीं कोई मुकाबला तो किया नहीं। एक पक्षीय नारी-मेध चलता रहा। वह भी कुछ दशकों से न चलकर युगों से एक पक्षीय युद्ध चल रहा है, और परिणाम दोनों की जनसंख्या के अनुपात में बावन और अड़तालीस के मामूली अंतर तक आया, और वह भी हाल के कुछ वर्षों में। आपने **"(1) युगों (2) युद्ध (3) नारी-मेध"** सरीखे भारी-भरकम शब्द संपादकीय में लिखकर मेरे मन में इच्छा जागृत कर दी है कि मैं भी कुछ लिखूँ। क्योंकि यदि प्रकृति युगों से लैंगिक अनुपात में कुछ मामूली फर्क पुरुषों के पक्ष में डालती रहती है, तो यह मामूली प्राकृतिक फर्क भी तो कुछ प्रभाव डालता ही होगा।

आपने अमर्त्य सेन जी के हवाले से प्रति वर्ष दस करोड़ महिलाओं के लापता होने के आँकड़े दिए। मुझे नहीं पता कि इस संपादकीय में इसका यथार्थ क्या है? ये आँकड़े सिर्फ भारतीय महिलाओं के हैं या इसमें चीन भी शामिल है, या पूरे विश्व की महिलाएँ शामिल हैं। फिर "लापता" शब्द से आपका आशय क्या है? यदि लापता से आपका आशय हत्या, अस्वाभाविक मृत्यु, भ्रूण-हत्या या उत्पीड़न मृत्यु से है, तो अब तक सैकड़ों वर्षों में महिलाओं की आबादी शून्य हो जानी चाहिए थी। और यदि "लापता" का आशय छत्तीसगढ़ से हरियाणा जाना है, तो नारी-मेध या युद्ध के साथ इसे कैसे जोड़ा जा सकता है। वैसे भी "दस करोड़ प्रति वर्ष" जैसे शब्द इतने छोटे नहीं हैं कि उन्हें यूँ ही उपयोग कर दिया जाए।

मैंने महिला और पुरुष को कभी दो पृथक वर्ग न मानकर एक परिवार के दो घटक माना। स्पष्ट है कि मेरे विचार में महिला उत्पीड़न कोई पुरुष अत्याचार न होकर एक सामाजिक कुरीति मात्र है, जो समान नागरिक संहिता को संवैधानिक मान्यता देने मात्र से महत्वहीन हो सकती है। राजनीतिक दल अपने वर्ग-संघर्ष के स्वार्थ के कारण इस समान नागरिक संहिता को लागू नहीं करना चाहते। जो दल महिला-पुरुष भेदभाव के इतने विरुद्ध हैं, उन्हें समान नागरिक संहिता के पक्ष में जोरदार आवाज क्यों नहीं उठानी चाहिए। साम्यवादियों का तो स्वार्थ है कि समान नागरिक संहिता किसी न किसी रूप में वर्ग विद्वेष, वर्ग - संघर्ष को नुकसान पहुँचाती है, और यही साम्यवाद का खास आधार है। भारतीय जनता पार्टी ने समान आचार संहिता को ही समान नागरिक संहिता कहकर मुसलमानों पर भी हिन्दुओं के समान ही हिन्दू कोड बिल सरीखा अत्याचारी कानून थोपने की मांग शुरू कर दी। कांग्रेस को सिर्फ सत्ता से मतलब रहता है, चाहे समान नागरिक संहिता से मिले या असमान से। समाजवादियों में लोहिया, मधु लिमये के बाद न कोई गंभीर विचारक ही हुआ, न ही विचारों का महत्व। आश्चर्य ही है कि अपने आपको समाजवादी कहने वाले भी महिला आरक्षण को समाज-तोड़क प्रयत्न घोषित करने के स्थान पर आरक्षण में आरक्षण की खतरनाक मांग कर रहे हैं। ऐसी सामाजिक स्थिति में यदि गिरीश जी सरीखा कोई विद्वान महिलाओं की स्थिति को बढ़ा-चढ़ाकर प्रकट करने की भूल भी कर दें, तो कोई विशेष चिंता की बात नहीं। किसी न किसी बहाने समाज व्यवस्था को तोड़-मरोड़कर, छिन्न-भिन्न करके राज्य के सहचर बनाने के प्रयासों में साहित्यकार भी पीछे नहीं रहना चाहता यह एक चिंता का विषय है। ... लेख दो बातें स्थापित करना चाहता है—

(1) महिलाओं पर हिंसक अत्याचार

(2) महिलाओं के विरुद्ध शोषण

हिंसक अत्याचार के कारण महिला-पुरुष के बीच आबादी का संतुलन गड़बड़ हो जाता है। यह गड़बड़ी हुई भी है, भले ही उसे तिल का ताड़ बना दिया जाए। किन्तु महिलाओं के शारीरिक शोषण की जो घटनाएँ बताई जाती हैं, वे लगभग असत्य हैं। लड़कियों को ठीक से भोजन नहीं मिलता, महिलाओं से अधिक काम लिया जाता है, महिलाएँ असमय बूढ़ी हो जाती

से अधिक काम लिया जाता है, महिलाएँ असमय बूढ़ी हो जाती हैं—आदि-आदि। प्रचार के अनुसार महिलाओं का जीवन बहुत कठिन है। किन्तु नवीनतम राष्ट्रीय सर्वेक्षण के अनुसार भारत में पुरुषों की औसत आयु साढ़े सत्तर वर्ष और महिलाओं की औसत आयु बहत्तर वर्ष है। सब प्रकार के अत्याचार भी हो रहे हैं तथा दहेज उत्पीड़न, महिला उत्पीड़न आदि सभी सामाजिक उत्पीड़नों के बाद भी उनकी औसत आयु अधिक है। महिला उत्पीड़न का प्रचार करने वालों को उत्तर देना चाहिए।

मेरा यह सब लिखने का आशय यह नहीं कि मैं महिला-पुरुष के बीच की वर्तमान सामाजिक भेदभाव का बचाव कर रहा हूँ। मैं तो इस भेदभाव के नाम पर आने वाले गंभीर खतरे की चिंता कर रहा हूँ। जब भारत गुलाम था तब अंग्रेज भारत को हिन्दू-मुसलमान के रूप में अलग-अलग घोषित करके मुसलमानों की अधिक चिंता करता था, जिससे ये दोनों कभी एकजुट न हों। अंग्रेजों का उद्देश्य तो पूरा नहीं हुआ, किंतु हम सदा-सदा के लिए दो भागों में बँट गए। वर्तमान राजनीतिक वातावरण समाज में महिलाओं के पक्ष में जो घड़ियाली आँसू बहा रहा है, वह वही अंग्रेजी कूटनीति का भाग है। समाज पर नए-नए कानून थोपकर समाज की जगह राज्य सशक्तिकरण के घातक प्रयास से अधिक और कुछ नहीं। कुटिल राजनीति के खूनी पंजों से समाज व्यवस्था को बचाना हमारी पहली आवश्यकता है। हमारे साहित्यकार बंधुओं से निवेदन है कि सामाजिक अव्यवस्थाओं को चर्चा में तिल का ताड़ बनाकर कहीं आप भी राजनीतिक गुलामी को आमंत्रण तो नहीं दे रहे हैं? यदि ऐसी भूल हो रही हो तो सावधान रहें। हम ऐसी भूल न करें।

7. महिला-पुरुष संबंध और सुप्रीम कोर्ट का निर्णय 2010

पूरी दुनिया में आदर्श व्यवस्था वह होती है, जिसमें व्यक्ति, परिवार, राज्य और समाज के अधिकारों का संतुलित विभाजन हो। दुनिया में जहाँ कहीं भी इस अधिकार संतुलन को अस्वीकार करके व्यक्ति, जाति, धर्म और राज्य के अधिकार विभाजन को स्वीकार किया गया, उन सभी देशों में अशांति और अव्यवस्था अवश्यंभावी है। अब तक पूरी दुनिया में आदर्श व्यवस्था तो स्थापित नहीं हो सकी, किन्तु भारत एक प्रत्यक्ष उदाहरण है, जहाँ पूरी तरह अशांति और अव्यवस्था छायी हुई है। हम भारत की इस अव्यवस्था को सुधारने का प्रयास करते रहते हैं, किन्तु व्यवस्था बिगड़ती ही जा रही है, क्योंकि असंतुलन का आधार भारतीय संविधान का वह स्वरूप है, जो मूल रूप से व्यक्ति, परिवार, राज्य और समाज के आधार पर न बनकर व्यक्ति, जाति, धर्म और राज्य के रूप में बना। अर्थात् संविधान से परिवार और समाज को बाहर निकालकर जाति और धर्म को शामिल कर दिया गया। यह भूल किसने की, क्यों की, परिणाम क्या हुआ आदि विषय तो इस लेख से भिन्न हैं, किन्तु भूल हुई—यह निर्विवाद है और इस भूल को ठीक किए बिना किसी सुधार के लक्षण नहीं दिख सकते।

ऐसे ही संकट काल में सुप्रीम कोर्ट ने एक साधारण सा प्रभावकारी दिखने वाला महत्वपूर्ण फैसला सुनाया कि किसी बालिग स्त्री-पुरुष के लिए एक साथ रहने में विवाह की धार्मिक या कानूनी अनिवार्यता आवश्यक नहीं है। इसके पूर्व महाराष्ट्र सरकार ने भी कुछ ऐसा ही विचार व्यक्त किया था। सुप्रीम कोर्ट के निर्णय में दो भाग हैं—

1.बिना विवाह के एक साथ रहना किसी भी कानून के अंतर्गत अपराध नहीं है।

2.यह संबंध अनैतिक भी नहीं है, क्योंकि राधा और कृष्ण भी बिना विवाह के साथ रहते थे।

सुप्रीम कोर्ट के निर्णय का पहला भाग निष्कर्ष रूप में है और दूसरा उदाहरण रूप में। फिर भी विचारणीय तो दोनों हैं ही। समाज में दो विपरीत विचार पैदा हुए—

1.सुप्रीम कोर्ट का निर्णय अनुचित है, क्योंकि इस तरह परिवार व्यवस्था को तोड़ देने से समाज में अव्यवस्था फैल जाएगी।

2.फैसला ठीक है, क्योंकि बालिग स्त्री-पुरुषों के निर्णय की स्वतंत्रता में कोई बाधा क्यों हो।

स्त्री-पुरुष के अनियंत्रित संबंध समाज में अव्यवस्था पैदा करते रहे हैं और भविष्य में भी करते रहेंगे। ये संबंध सिर्फ शारीरिक संबंध मात्र तक सीमित नहीं होते। इनका जन्म से मृत्यु तक पारिवारिक और सामाजिक संबंध भी है। इस संपर्क के परिणामस्वरूप ही भविष्य में संतान पैदा होती है। यदि स्त्री-पुरुष संबंध अव्यवस्थित होंगे, तो संतान के लालन-पालन, शिक्षा-दीक्षा पर भी प्रभाव पड़ेगा। परिवार व्यवस्था के टूटने से वृद्ध सदस्यों के मामलों में भी दिक्कत आनी ही है। परिवार व्यवस्था को तोड़कर पूर्ण स्वतंत्रता के बहुत ज्यादा दुष्परिणाम होंगे ही। शायद न्यायालय ने इस पक्ष पर गौर नहीं किया। मेरा विचार है कि स्त्री-पुरुष संबंधों में पूर्ण स्वतंत्रता को निरुत्साहित करना चाहिए। किन्तु इन मामलों में कानून का हस्तक्षेप तो और भी ज्यादा घातक होता है , क्योंकि राज्य ऐसा करने में न समर्थ है, न हो सकता है, और कानून की मंशा भी समाज व्यवस्था को मजबूत बनाने की न होकर कमजोर करने की रही है। राज्य समाज का सहायक तो हो सकता है, परन्तु विकल्प नहीं बन सकता। पुराने जमाने में समाज मजबूत था और राज्य का हस्तक्षेप लगभग शून्य था, तब परिवार व्यवस्था इतनी छिन्न-भिन्न नहीं थी, जितनी आज है। राज्य ने सब काम अपने जिम्मे लेकर समाज व्यवस्था को तो शिथिल कर दिया और खुद उससे संभल नहीं रहा है। राज्य यदि विवाह और स्त्री-पुरुष संबंधों पर अपनी इतनी ताकत खर्च करेगा, तो चोरी, डकैती, मिलावट और बलात्कार कौन रोकेगा? एक ऐसी मरियल राज्य व्यवस्था, जिसके नख से शिख तक भ्रष्टाचार ही भ्रष्टाचार व्याप्त है, वह स्त्री-पुरुष संबंधों को संतुलित बनाए रखने का दायित्व भी ले ले—यह उसकी बदमाशी ही मानी जाएगी, क्योंकि न वह मरियल व्यवस्था अपराध रोक पाएगी, न ही स्त्री-पुरुष संबंध ठीक कर पाएगी।

मेरे विचार में सुप्रीम कोर्ट का फैसला बिल्कुल ठीक है। राज्य ने अनावश्यक हस्तक्षेप कर-करके इस व्यवस्था को ही अव्यवस्थित कर दिया था। विवाह की उम्र, दहेज का लेन-देन, स्त्री-पुरुष आबादी का असंतुलन, महिला उत्पीड़न, महिला हीन भावना निवारण आदि हजारों कानून बनाकर परिवार व्यवस्था का कानूनों ने कचूमर निकाल दिया था। निकम्मे कानून अपनी श्रेष्ठता स्थापित करने के लिए और कानून बनाते थे। ये कानून समाज को और अधिक गुलाम बनाने में तो सफल होते थे, किन्तु समाज में व्यवस्था बनाने में सफल कभी न हुए हैं, न होंगे, क्योंकि कानून कभी समाज व्यवस्था के विकल्प नहीं हो सकते। कानून बीमारी की दवा हैं, टॉनिक नहीं। दुर्भाग्य से दवा ही अपने को टॉनिक समझने लगी है। दवा के साइड इफेक्ट को तो टॉनिक कम कर सकता है, किन्तु टॉनिक का साइड इफेक्ट कौन ठीक

करेगा? राज्य सामाजिक मामलों में नित नए-नए हस्तक्षेप के कानून बनाकर साइड इफेक्ट के रूप में भ्रष्टाचार का समुद्र पैदा कर रहा है। इसका समाधान कौन करेगा?

मैं तो बीस-तीस वर्ष पूर्व से ही लगातार लिखता रहा हूँ कि परिवार के पारिवारिक और समाज के सामाजिक मामलों में सरकार को कोई कानून नहीं बनाना चाहिए। मेरे विचार में स्त्री-पुरुष संबंध भी ऐसे मामलों में शामिल हैं, जो कानून के हस्तक्षेप से बाहर रहने चाहिए। इतने वर्षों बाद न्यायालय ने लिव-इन रिलेशनशिप आदेश देकर पहल की है। न्यायालय ने जो फैसला दिया, वह क्या सोचकर दिया—यह मुझे नहीं पता, किन्तु इस फैसले का दूरगामी प्रभाव होगा। सरकार के सैकड़ों अनावश्यक कानून प्रभावहीन हो जाएँगे। बाल विवाह का कानून महत्व खो देगा। नाबालिग लड़के-लड़की बिना विवाह किए साथ रहेंगे, तो आपका कानून क्या करेगा? संतानोत्पत्ति का लेखा-जोखा भी कठिन होगा। भ्रूण-हत्या भी प्रमाणित करना आसान नहीं होगा। अनिवार्य विवाह पंजीकरण कानून भी धूल चाटता नजर आएगा। तलाक के जटिल कानूनों से भी मुक्ति मिलेगी। वैश्यावृत्ति संबंधी कानून भी धीरे-धीरे प्रभावहीन हो जाएँगे। पारिवारिक सम्पत्ति के बँटवारे के भी नए नियम बनाने होंगे। धीरे-धीरे पता चलेगा कि कहाँ-कहाँ और कितना प्रभाव होगा, किन्तु होगा अवश्य—इतना निश्चित है। और जो भी होगा, वह समाज में भले ही थोड़ी सी उच्छृंखलता बढ़ाए, किन्तु राज्य की गुलामी से तो मुक्ति अवश्य दिलाएगा। न्यायालय के इस निर्णय का बहुत व्यापक विरोध नहीं हुआ क्योंकि कथित धर्म गुरुओं या चरित्र के ठेकेदारों को इसके दूरगामी प्रभाव का आभास ही नहीं हुआ। मीडिया ने भी इसे ज्यादा नहीं उछाला। अंग्रेजी शब्द होने से वैसे भी सामान्य लोगों को कम समझ में आया। एक बात और है कि नासमझ धर्म गुरुओं ने धारा 375 हटाने पर भरपूर विरोध करके अपनी ताकत आज़मा ली थी। वह भी तो ऐसा ही मामला था। वहीं से थक-थुका कर ये इतने पस्त थे कि इस मामले से दूर ही रहना ठीक समझे। संघ परिवार उठाता तो वह अभी भाजपा सशक्तिकरण में व्यस्त है। रामदेव जी भी राजनीतिक उठा-पटक में ही लगे हैं। इसलिये यह मामला तूल नहीं पकड़ा। राजनेताओं को अब तक आभास ही नहीं है कि इस निर्णय का इतना दूरगामी परिणाम होगा। वे तो लिव-इन रिलेशनशिप मात्र ही मानकर चल रहे हैं। किन्तु उन्हें जब पता चलेगा कि इस फैसले से उनके कानूनी हस्तक्षेप में कमी आएगी तथा सामाजिक गुलामी कम होगी, तो वे अवश्य कोई न कोई तिकड़म करेंगे। सैकड़ों वर्षों से समाज को गुलाम बनाने के प्रयत्नों को वे इतनी आसानी से ध्वस्त नहीं होने देंगे। अभी तो सुगबुगाहट नहीं है, किन्तु आगे क्या होगा यह पता नहीं। यदि कोई धार्मिक-सामाजिक संगठन आगे आया, तब तो नेता इसे अवश्य ही उठा लेगा—इतना निश्चित है। क्योंकि ये नेता और धर्मगुरु किसी न किसी तरह समाज को समझाने में सफल हो सकते हैं कि इस फैसले से परिवार व्यवस्था, समाज व्यवस्था टूटेगी, जबकि सच्चाई इसके ठीक विपरीत है। भारत की परिवार व्यवस्था, समाज व्यवस्था को तोड़ने में कानून और राज्य ने ही सारी पहल की है। यदि भारत पर ऐसा रद्दी संविधान न थोपकर कोई ऐसा संविधान बनाया जाता, जिसमें परिवार व्यवस्था, गाँव व्यवस्था, समाज व्यवस्था में कानूनों का न्यूनतम हस्तक्षेप होता, तो ऐसी अव्यवस्था नहीं होती जैसी आज है। हुआ यह कि अंग्रेजों के कार्यकाल में महापुरुषों का समाज पर प्रभाव घटता गया। राजनीतिक सत्ता के दलाल महापुरुष का खिताब पा पाकर सरकार से कानूनों की मांग करने लगे, और सरकार नए-नए कानून थोपने लगी। स्वतंत्रता के बाद तीन महापुरुषों से कुछ उम्मीदें बंधी थीं— 1.**संत विनोबा भावे** 2.**श्री राम शर्मा** 3.**बाबा रामदेव**

विनोबा जी सरकारी संत बन गए, श्री राम शर्मा जी रहे नहीं और रामदेव जी स्वयं ही राजा बनने की राह पर चल पड़े, तो सोचिए कि राज्य के निष्कंटक होने में बाधा क्या है?

मैं जानता हूँ कि सरकारें और प्रभावहीन धर्मगुरु इतनी आसानी से मानेंगे नहीं, किन्तु समाज को भी जागरूक बनाने की जरूरत होगी। समाज को समझाना होगा कि सामाजिक अव्यवस्थाओं के परिणामस्वरूप राजनीतिक हस्तक्षेप नहीं बढ़ा है, बल्कि इसके उलट सच्चाई यह है कि कानूनी हस्तक्षेप के परिणामस्वरूप सामाजिक अव्यवस्था बढ़ी है। सरकार के हटने से होने वाला नुकसान उतना बड़ा नहीं है जितना सरकारी हस्तक्षेप से होने वाला नुकसान। इस एक न्यायालयीन निर्णय ने समाज सशक्तिकरण की संभावनाएँ जागृत कर दी हैं। उच्छृंखलता और गुलामी के बीच गुलामी अधिक घातक है, और यदि गुलामी के बाद भी उच्छृंखलता न रुके तो ऐसी गुलामी को तो तत्काल ही त्याग देना चाहिए। उच्छृंखलता का भय दिखाकर राजनीतिक दलाल हमें गुमराह करेंगे, किन्तु हमारा कर्तव्य है कि हम सतर्क रहें।

8. श्रीमती अंजलि सिंह, महिला अधिकार कार्यकर्ता 2011

विचार: प्रसिद्ध लेखिका अरुंधती राय की माँ मेरी राय एक सुपरिचित शिक्षा विद हैं। उन्होंने अपने भाइयों से संपत्ति अधिकार का मुकदमा पच्चीस वर्षों तक लड़कर अंततः विजय प्राप्त कर ही ली। वे केरल निवासी हैं। अनेक न्यायालयों से हार-जीतते अंततः सुप्रीम कोर्ट से मुकदमा जीतकर उन्होंने समाज को राह दिखाई है कि सत्य के लिए संघर्ष करते रहने से विजय अवश्य होगी। अरुंधती जी की माँ मेरी राय इस संघर्ष के लिए बधाई की पात्र हैं।

उत्तर: -श्रीमती राय इसलिये भी बधाई की पात्र हैं कि उन्होंने अरुंधती राय जैसी संघर्षशील कन्या को जन्म दिया। अरुंधती जी से भूल हो गई। अपनों से विवाद करने का गुण उन्हें माता-पिता से ही प्राप्त हुआ है। अच्छा होता यदि वे अपने माता-पिता के परिवार से ही मुकदमा लड़कर जीतने का इतिहास बनाने में सक्रिय हो गई होतीं, तो आज राष्ट्रीय स्तर पर अनावश्यक विवाद पैदा करने का उनके पास समय ही नहीं बचता। साथ ही उनकी माता मेरी राय को भी एक सबक मिल जाता।

मेरी राय में पच्चीस वर्षों तक अपने भाइयों से मुकदमा लड़कर जो केस जीत लिया उसके लिए मेरी राय को बधाई दी जाए या नहीं, यह विचारणीय है। मेरी राय ने अपने ही भाइयों से पच्चीस वर्षों तक कुछ संपत्ति के लिए कानूनी युद्ध किया और जीत ही गई, तो इसमें मुझे तो कुछ बधाई देने लायक नहीं दिखा। माता-पिता की संपत्ति हिस्से के लिए इतना लंबा संघर्ष करने वाली महिला के कार्य में कौन सा आदर्श छिपा है, जिसके लिए उसे बधाई दी जाए? यदि वे मजबूर होतीं तो कुछ दया की पात्र थीं। किन्तु आर्थिक स्तर पर मजबूत होते हुए इतनी लंबी मुकदमेबाजी, और वह भी अपने ही भाइयों के खिलाफ, आपकी नजर में आदर्श हो सकती है, किन्तु मेरी नजर में तो कलंक ही है। इस लड़ाई में कौन सा सामाजिक उद्देश्य छिपा है? समाज को अनावश्यक वर्ग संघर्षों में उलझाकर उन्हें मुकदमेबाजी का मार्ग दिखाने वाली मेरी नजर में आदर्श नहीं। मेरी राय के माता-पिता ऐसी संतान को स्वर्ग

से आशीर्वाद देते होंगे या पश्चाताप करते होंगे—यह आपके सोचने का विषय है, मेरे सोचने का नहीं, क्योंकि अपने परिवार में मुकदमेबाजी में हार हो या जीत, किन्तु मैं तो उसे अपने जीवन की हार के रूप में ही मानता हूँ।

आपने एक सामाजिक कार्यकर्ता का लेबल लगा रखा है। आज अनेक विदेशी या सरकारी धन प्राप्त समाज-तोड़क व्यक्ति और संस्थाएँ सामाजिक कार्यकर्ता का लेबल और बोर्ड लगाकर घूम रहे हैं। ऐसे कार्यकर्ताओं को विदेशी या सरकारी उपक्रम, सामाजिक संस्था का सर्टिफिकेट भी देते हैं और सामान या पारितोषिक भी। मैं नहीं कह सकता कि आप किस श्रेणी की सामाजिक कार्यकर्ता हैं, क्योंकि मैं व्यक्तिगत रूप से आपको नहीं जानता। यदि संवाद बढ़ेगा, तब जानकारी होगी।

9.**प्रश्न** – आप बार-बार लिखते हैं कि महिला और पुरुष दो अलग-अलग वर्ग न होकर व्यक्ति ही हैं, जो व्यक्ति के रूप में तो एक-दूसरे के पूरक हैं, किन्तु संगठन के रूप में घातक। आप महिला आरक्षण विधेयक का भी समर्थन नहीं करते। कुछ दिनों पूर्व महिला सशक्तिकरण दिवस पर भी आपने जो भाषण दिया वह बिल्कुल अलग ही था। आप इस संबंध में थोड़ा विस्तार से समझाइए।

उत्तर – चाहे महिला हो या पुरुष, दोनों या तो व्यक्ति होते हैं या परिवार। इसके बीच में कोई तीसरा संगठन हो ही नहीं सकता। स्त्री और पुरुष एक-दूसरे के पूरक हैं, विकल्प नहीं। परिवार में स्त्री पुरुष के अभाव में या पुरुष स्त्री के अभाव में अपने वर्ग के साथ मिलकर अपनी पूर्ति नहीं कर सकता। स्त्री और पुरुष एक-दूसरे के पूरक ही होते हैं, विकल्प नहीं हो सकते। दोनों ऐसी दौड़ दौड़ते हैं जिसमें दोनों का एक-एक पैर तो खुला है और एक-एक मिलाकर बांधा है। इस तीन-पैर की दौड़ में न दो महिलाएं पैर बांधकर दौड़ सकती हैं, न ही दो पुरुष। जब समाज व्यवस्था के लिए ऐसी शर्तों वाली तीन-पैर की दौड़ अनिवार्य है, तब महिला और पुरुष पृथक वर्ग हो कैसे सकते हैं, क्योंकि वर्ग बनने के लिए तो आपका पैर खुला होना चाहिए।

जब पुरुष और महिला पृथक वर्ग हैं ही नहीं, तो पृथक चिंता कैसी? कोई यदि ऐसी अलग चिंता करता है, तो उसके पीछे कोई दूर का स्वार्थ छिपा है। महिला सशक्तिकरण दिवस पर आरक्षण समर्थक सभी पुरुष नेताओं का स्वर एक ही था कि आरक्षण हो। मैंने दो सुझाव दिए कि या तो दस वर्षों के लिए सभी स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित कर दिए जाएँ, अथवा महिला आरक्षण में एक नई शर्त जोड़ी जाए कि एक परिवार का एक ही व्यक्ति उक्त पद पर जा सकेगा। मेरे सुझाव पर सभी पुरुषों को भी आपत्ति थी और महिलाओं को भी। सच्चाई यह है कि कुछ सक्षम लोग सारे सामाजिक लाभ कम से कम परिवारों के बीच समेटना चाहते हैं। स्वतंत्रता के समय यदि पाँच सौ बयालीस सांसदों में पाँच सौ परिवारों का प्रतिनिधित्व था, तो अब करीब साढ़े तीन सौ का ही बचा है, और महिला आरक्षण ढाई सौ में ही समेट देगा। सभी नेता किसी न किसी आधार पर इसी तिकड़म में हैं कि उनके परिवार के सभी सदस्य लाभ के पद पर पहुँच जाएँ, और ऐसा पद पाने के लिए महिला आरक्षण आवश्यक है।

ऐसे आरक्षण की आवाज़ सक्षम और सुविधा प्राप्त पदों तक ही सीमित है। सम्पूर्ण भारत में ऐसे आरक्षण का लाभ उठाने की क्षमता एक प्रतिशत से भी कम परिवारों की महिलाओं तक ही सीमित है। शेष निन्यान्नवे प्रतिशत को न कोई लाभ है न भूमिका। मैंने पढ़ा है कि लीची का पेड़ यदि नई भूमि पर लगाना है, तो आवश्यक है कि किसी पुराने लगे हुए लीची के पेड़ की मिट्टी खोदकर उस नई भूमि में डाली जाए। आरक्षण का आंदोलन चलाने वाली महिलाओं की यदि पृष्ठभूमि का आकलन करें, तो अधिकांश के परिवार का कोई न कोई सदस्य इस दिशा में उन्हें प्रेरित करने वाला है ही। इनमें अनेक तो ऐसी भी हैं, जो अपने परिवार के पुरुष सदस्यों की प्रेरणा के अभाव में अवैध पुरुषों से भी प्रेरणा लेने में नहीं हिचकतीं। नारायण दत्त जी तिवारी ने अकेले ही कितनी महिलाओं को सक्षम बनाया, यह सूची लंबी हो सकती है। स्वाभाविक है कि ऐसी महिलाओं की आरक्षण की मांग में अग्रणी भूमिका होगी ही, और पीछे से समर्थन में उनके पुरुष परिवार या मित्र खड़े ही हैं। बाकी निन्यान्नवे प्रतिशत पुरुष या स्त्री इसमें कुछ कर सकते ही नहीं हैं। राष्ट्रीय राजनीति में शामिल होने को आतुर महिलाओं में से कितने प्रतिशत सफल परिवार व्यवस्था चला रही हैं, इसकी भी जांच की जाए, तो ऐसा प्रतिशत बहुत कम ही होगा। जो महिला परिवार नहीं चला सकती, वह देश चलाने के लिए बहुत व्याकुल है। ऐसी महिलाओं का प्रतिशत आधे से तो अधिक ही होगा, कम नहीं। यदि यह तर्क दिया जाए कि पुरुषों में भी महिलाओं की अपेक्षा ऐसे लोगों का प्रतिशत कम नहीं, तो फिर महिलाओं पर ही आपत्ति क्यों? यह प्रश्न इस लिए गलत है कि क्या आपको किसी गलत काम की हिस्सेदारी में विशेष प्रावधान चाहिए? सोचने का विषय है कि भ्रष्टाचार या पारिवारिक मामलों में चरित्र पतन का प्रतिशत राजनीति में ही क्यों गिर रहा है, और इसके समाधान में आरक्षण की भूमिका क्या है? मुझे तो अब भी लगता है कि राजनीति से जुड़े कुछ परिवार अपनी महिलाओं को आगे करके ऐसा वातावरण बनाने का प्रयास करते रहते हैं, और हम लोग उसी हवा में बह जाते हैं।

एक व्यक्ति ने मीटिंग में प्रश्न किया था कि आजकल महिलाएँ बेची जाने लगी हैं। क्या यह मानवता के विरुद्ध नहीं है? मैंने बहुत विचार किया तो पता चला कि प्रश्नकर्ता हर मामले में सिर्फ प्रश्न करना ही जानता है; उत्तर तो उसने न कभी सोचा न सोचने की जरूरत समझी। एक लड़की का पिता अपनी कम योग्य, कम सुंदर लड़की अधिक योग्य लड़के या उसके परिवार को देता है और बदले में धन भी लेता है, तो यह दहेज के नाम पर आपत्तिजनक है। एक लड़की का पिता अपनी अधिक योग्य लड़की कम योग्य को देकर धन लिया, तो इसमें लड़की बेची गई। कल्पना कीजिए, लड़कियाँ समाज में लड़कों से अधिक हो जाएँ तथा दहेज बढ़ जाए, तब भी आपत्ति। मैंने प्रश्नकर्ता से पूछा कि लड़की घर में तो रहेगी नहीं, उसे देना तो है ही। यह निर्णय परिवारों के आपसी निर्णय पर ही क्यों न छोड़ दें कि धन देना है या लेना है। समाज को इस बीच में क्यों हस्तक्षेप करना चाहिए? आजकल हर ऐरा-गैरा नत्थू-खैरा समाजसेवक दहेज और कन्या भ्रूण हत्या का विरोध करता मिल जाएगा। जिसे समाज सेवा का कोई अनुभव भी नहीं है, वह भी इन दो बातों पर अवश्य ही एक लंबा भाषण दे देता है। यदि समाज में कड़ाई से दहेज को रोक दिया जाए, तो स्वाभाविक है कि गरीब घरों की लड़कियाँ अमीर घरों की ओर

आकृष्ट होंगी। तब अमीर घरों की लड़कियों को और कहाँ भेजेंगे। यदि भ्रूण हत्या का विरोध हो, तो अलग बात है; अन्यथा सिर्फ कन्या भ्रूण हत्या तो अनावश्यक मुद्दा है। यदि लड़कियों की समाज में कुछ कमी होने से उनकी मांग और महत्व बढ़ जाए तथा दहेज समाप्त हो जाए, तो आप इतने उतावले क्यों हैं? जब समाज में लड़कियों की मांग कम थी और पूर्ति ज्यादा तथा दहेज चरम पर था, तब तो आप जैसे अनाड़ी समाज चिंतकों ने पता नहीं क्या सोचकर हिंदू कोड बिल बनाकर एक पुरुष, एक स्त्री तक की सीमा निर्धारित कर दी। अब कुछ अनुपात बदला है और महिलाओं को समाज में कुछ मांग बढ़ रही है, तो आप अब कन्या भ्रूण हत्या के विरुद्ध परेशान हो रहे हैं।

एक व्यक्ति ने प्रश्न किया कि पति-पत्नी के बीच शारीरिक संबंधों में हमेशा पति ही आक्रामक क्यों होता है? क्यों नहीं दोनों के बीच समान संबंध हो? मुझे उसके प्रश्न पर बहुत आश्चर्य हुआ। पति और पत्नी के बीच कौन आक्रामक हो, कौन सुरक्षात्मक, इसकी चिंता उन्हें ही क्यों न करने दे। पुरुष और महिला की शारीरिक बनावट ही ऐसी है कि ऐसे व्यक्तिगत संबंधों में पुरुष का आक्रामक होना प्राकृतिक आवश्यकता है। यदि पुरुष हीन भावना से ग्रसित हो जाए, तो सारी व्यवस्था ही चौपट हो जाएगी। यदि किसी कारणवश ऐसा हुआ, तो पुरुष का मानसिक इलाज कराना पड़ता है। यही कारण है कि समाज में विवाह के पूर्व ही पुरुष और स्त्री की क्षमता का आकलन करते समय लड़के को लड़की से अधिक योग्य और सक्षम चुनने की प्रथा है। यदि लड़का लड़की की अपेक्षा कम योग्य हो और कोई अन्य कारण न हो, तो विवाह बेमेल मान लिया जाता है।

आज सबसे पहले यह समझने की जरूरत है कि परिवार के पारिवारिक मामलों में समाज के हस्तक्षेप करने की सीमा क्या हो और समाज के सामाजिक मामलों में कानून के हस्तक्षेप की सीमा क्या हो? जब कोई परिवार इन दोनों सीमाओं को तोड़ता है तभी कानून को हस्तक्षेप करना चाहिए। वर्तमान स्थिति तो यह है कि कानून निर्माता न परिवार की सीमाओं को समझ रहे हैं न समाज की। इनकी स्वयं की क्षमता और चरित्र भी परिवारों और समाज के औसत चरित्र की अपेक्षा कमजोर ही है। ऐसे एक गिरोह ने अपने मनमाफिक एक किताब लिखकर उसे संविधान कह दिया और उस संविधान के आधार पर परिवार और समाज व्यवस्था पर स्वयं को स्थापित कर लिया। ये लोग जब चाहें तब उस किताब में महिलाओं को शोषित लिख दें और जब चाहे तब हटा दें। ये लोग जब चाहे तब उस किताब में उक्त नकली समस्या का समाधान लिखकर हम पर थोप दें और जब चाहे तब उक्त समाधान को ही घातक लिखना शुरू कर दें। ये दो गुटों में बंटकर नाटक करते रहते हैं और समाज नाटक को ही टकराव समझ कर देखने में व्यस्त हो जाता है। अब यह बात स्पष्ट होती जा रही है कि परिवार व्यवस्था के टूटने का मुख्य कारण भी वह किताब ही है जो स्त्री और पुरुष को दो वर्गों में खड़ा करके राजनेताओं का स्वार्थ पूरा करना चाहती है।

हर राजनेता सामाजिक एकता से डरता है। वह समाज को धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्रीयता, उम्र, लिंग, आर्थिक असमानता तथा उत्पादक-उपभोक्ता के आठ आधारों पर बांटकर वर्ग निर्माण, वर्ग - विद्वेष, वर्ग - संघर्ष के प्रयत्न करता रहता है। इनमें से भाषा, क्षेत्रीयता, उम्र और उत्पादक-उपभोक्ता वर्ग संघर्ष के लिए स्थायी आधार न होकर तात्कालिक आधार ही बन पाते हैं। ये सभी मुद्दे कुछ समय तक ही काम करते हैं, लंबे समय तक टिकते नहीं। धर्म, जाति के मुद्दे स्थायी तो हैं, किन्तु स्पष्ट ध्रुवीकरण नहीं कर पाते। आर्थिक विषमता का मुद्दा सफल नहीं हो पा रहा। ऐसी स्थिति में महिला-पुरुष का वर्ग भेद ही सर्वाधिक स्पष्ट और दीर्घकालिक वर्ग संघर्ष की दिशा में सफल हो सकता है। यह मुद्दा लंबे समय तक समाज में ध्रुवीकरण करने की क्षमता रखता है। इसीलिए सभी राजनीतिक दल पूरी ईमानदारी से इस कोशिश में सक्रिय हैं कि महिला और पुरुष को दो समूहों में बांटकर इनमें वर्ग संघर्ष की स्थिति बनाना ही उनके लिए सबसे अच्छा मार्ग है। हम सतर्क रहकर विचार करें और उनसे अलग रहकर सोचें।

10.प्रश्न – इस लेख में आपने महिला आरक्षण का विरोध किया। महिलाओं पर अत्याचार आप किस प्रकार रोकेंगे?

उत्तर – महिला, पुरुष, युवक, वृद्ध व्यक्तिगत रूप से पृथक हैं, किन्तु सामूहिक रूप से पृथक-पृथक मानना घातक परंपरा है। ये सब मिलकर परिवार बनते हैं। परिवार बनते ही उनकी पृथक पहचान समाप्त हो जाती है और रह जाती है एक पारिवारिक पहचान। इनमें से किसी एक का भी सृजन स्वतंत्र नहीं होता। कोई यह नहीं कह सकता कि वह नारी से उत्पन्न है या नर से। नर और नारी के एकाकार प्रयास से संतान उत्पन्न होती है और एकाकार प्रयास से ही पूरा जीवन समाप्त करते हैं। समाज ने इन्हें व्यक्तिगत रूप से कुछ मौलिक अधिकारों की सुरक्षा का वचन दिया है। इसके आगे वे परिवार के अंग मात्र हैं।

जब पुरुष और महिला पृथक-पृथक वर्ग हैं ही नहीं, तो वर्ग के रूप में चिंतन की आवश्यकता ही नहीं है। हजारों वर्षों से पृथक-पृथक वर्ग की मान्यता ने ही समस्याएँ पैदा की हैं। प्राचीन समय में स्वार्थी पुरुषों ने महिलाओं को पृथक वर्ग कहकर उन पर तरह-तरह के आरोप जड़ दिए। अब स्वार्थी महिलाएं पुरुषों को वर्ग घोषित करके अत्याचार के आरोप जड़ रही हैं। मैं जब भी किसी सभा में जाता हूँ, तो यदि उस सभा में एक भी महिला राजनीति से जुड़ी होगी, तो वर्ग-विद्वेष की चर्चा अवश्य होगी। यह घातक है। आज समाज में निन्यान्नवे प्रतिशत लोग स्त्री और पुरुष को पृथक-पृथक वर्ग के रूप में मानने लगे हैं, जो पूरी तरह असत्य है।

किसी महिला के साथ अत्याचार हो सकता है। उसके लिए कानून है। किन्तु महिलाएं और पुरुष बहुवचन होते ही नहीं क्योंकि न उनका जन्म स्वतंत्र हुआ है न ही स्वतंत्र जन्म दे सकते हैं। किसी प्रकार के अलग कानून बन ही नहीं सकते क्योंकि उनका पृथक अस्तित्व ही नहीं है। महिला-पुरुष के बीच अत्याचार की जो अतिरंजित कथाएँ बताई जाती हैं, उनमें अनेक तो प्राकृतिक आवश्यकता हैं। स्त्री और पुरुष विवाह उपरान्त पति-पत्नी बन जाते हैं। दोनों के सुखी जीवन के लिए पति की आक्रामक मुद्रा तथा स्त्री की आकर्षक मुद्रा होनी चाहिए। यदि यह मुद्रा उलट जाए तो परिवार का इलाज कराना पड़ेगा। इस अंतर की सीमा तय हो सकती है। यदि अंतर उस सीमा से अधिक हो और आपस में पारिवारिक समझौते या सामाजिक अनुशासन से ठीक न हो, तब कानून का हस्तक्षेप हो। यहाँ तो कोई सीमा ही तय नहीं है। न्यायाधीश पति-पत्नी के आंतरिक संबंधों पर निर्णय देते हैं कि पत्नी की सहमति के बिना किया गया संभोग बलात्कार माना जाएगा। आचार्य पंकज जी ने एक किताब लिखी है "सम्यक संभोग, सदा निरोग". पुस्तक के अनुसार पुरुष को हमेशा आक्रामक होना चाहिए। जज के अनुसार पत्नी की सहमति होनी चाहिए। क्या सीमा रेखा हो यह न पति-पत्नी तय करेंगे, न परिवार, न समाज। तय करेगा कानून या कोर्ट। सेक्स के लिए भूखे दो स्त्री और पुरुष को दरोगा रोकेगा। बेहयाई तो इस सीमा तक है कि सरकार वैश्यालयों पर भी टैक्स लगाना चाहती है। भारत में अपना शरीर बेचकर भरण-पोषण को मजबूर महिलाओं की मजबूर आमदनी पर भी सरकार टैक्स लगाएगी, जबकि उसे शर्म करना चाहिए कि कोई पेट भरने को मजबूर महिला वैश्यावृति कर रही है।

मेरा आशय सिर्फ यही है कि महिला उत्पीड़न को स्वीकार करना बहुत घातक परंपरा है क्योंकि महिला उत्पीड़न को स्वीकार करने का मतलब है दोनों को पृथक वर्ग स्वीकार करना। यह स्वीकार बहुत हानिकर है।

11.प्रश्न – आजकल इतने प्रयासों के बाद भी महिलाएँ सार्वजनिक मंचों पर नहीं दिखतीं। यह समाज के लिए अच्छा है या बुरा?

उत्तर – यह सही है कि भारत में इतने प्रयासों के बाद भी महिलाएँ सार्वजनिक मंचों पर नहीं दिखतीं। साथ ही पूरे भारत में हो रही लाखों किसान आत्महत्याओं में भी महिलाएँ नहीं दिखतीं। दोनों बातें सच हैं क्योंकि पुरुष समझता है कि घर की आर्थिक चिंता उसका दायित्व है और घर की महिलाएँ समझती हैं कि घर की आंतरिक व्यवस्था उनका दायित्व है। यही कारण है कि दो-तीन प्रतिशत आधुनिक महिलाओं तथा राजनेताओं के लाख प्रयत्नों के बाद भी भारत की महिलाएँ अनावश्यक मंचों से दूर रहती हैं। सच्चाई यह है कि कुछ महिलाएँ तथा पुरुष भारत में महिला और पुरुष के बीच ध्रुवीकरण कराकर वर्ग संघर्ष के लिए उतावले हैं, जिससे कि उन्हें कुछ लाभ मिले। भारतीय महिलाएँ सब समझती हैं। मेरे विचार में सार्वजनिक मंचों पर महिलाओं का कम आना न अच्छा है न बुरा, क्योंकि महिला कोई अलग वर्ग है ही नहीं जिसे समाज से अलग रखकर देखा जा सके। जो महिलाएँ परिवार की सहमति से अथवा स्वतंत्र रूप से भी सार्वजनिक मंचों में जाना चाहती हैं, उन्हें छूट है, और जो न जाना चाहती हैं, उन्हें भी छूट है। सरकार और राजनीतिक दल चाहे कितना भी जोर लगा लें, भारत की महिलाएँ सब समझती हैं कि किसका क्या स्वार्थ है।

12.**प्रश्न** – आपने लिखा कि महिलाओं की कुल आबादी में करीब दो प्रतिशत महिलाएं ही आधुनिक हैं, अन्यथा शेष अठान्नवे प्रतिशत तो पारंपरिक महिलाएं ही हैं। आपने लिखा कि इन आधुनिक महिलाओं के पास तर्क का भी अभाव होता है तथा चरित्र के मामले में भी ये अठान्नवे प्रतिशत के पीछे ही होती हैं। आप ऐसा किस आधार पर कह सकते हैं?

उत्तर – आधुनिक महिलाएं कई मामलों में पारंपरिक महिलाओं से भिन्न होती हैं। ये व्यक्ति तो होती हैं, किन्तु स्वयं को पारिवारिक अनुशासन से भी अलग मानती हैं और सामाजिक अनुशासन से भी। ये महिलाएं महिला अधिकार के लिए संगठन बनाती हैं। ये सब आमतौर पर वामपंथी संगठनों से जुड़ी होती हैं।

इनके चरित्र के विषय में कुछ कहना न तो उचित है न ही प्रमाणित करना संभव है। मैंने अपने अनुभवों का निष्कर्ष लिखा है। सत्य है या असत्य, यह चर्चा का विषय नहीं। फिर भी अनेक आधुनिक महिलाओं के विषय में अफवाहें उड़ीं, जिनमें नारायणदत्त तिवारी, कल्याण सिंह जैसे अनेक राजनेताओं के नाम जुड़े। ऐसी आधुनिक महिलाओं की सूची लंबी से लंबी होते जाने के कारण मैंने अंदाज से यह बात लिख दी।

किन्तु इनके पास कोई तर्क नहीं होता यह सत्य है। मैंने टीवी पर ऐसी ही एक आधुनिक महिला कविता श्रीवास्तव को सुना। जोर देकर केवल एक बात बोल रही थी कि हर महिला को अपने शरीर पर पूरी स्वतंत्रता होनी चाहिए। बिल्कुल ही तर्कहीन कथन था।

भारत के प्रत्येक व्यक्ति को भी समान स्वतंत्रता होनी चाहिए तथा प्रत्येक नागरिक को भी। इन अधिकारों को ही मूल अधिकार कहते हैं। किन्तु किसी भी व्यक्ति या नागरिक को न सामाजिक मामलों में समान अधिकार होते हैं, न ही संवैधानिक मामलों में। एक व्यक्ति बीमार है, गरीब है, उसे विशेष सहायता की जरूरत है। स्वाभाविक है कि कुछ लोगों की सुविधाओं में कटौती करनी होगी। कुछ लोगों की सुविधाओं में कटौती करके कुछ दूसरों को दिया जाएगा, जिसके लिए प्राप्तकर्ताओं का कर्तव्य है कि वे उन दाताओं का धन्यवाद करें। आप गाली देकर या चिल्ला-चिल्ला कर विशेष सुविधाएं नहीं ले सकते। कविता जी तथा वैसी ही कुछ अन्य आधुनिक महिलाओं के कथन से लगा कि उनका महिला होना शेष समाज के लिए कुछ विशेष महत्व रखता है। ऐसी तर्कहीन बातें भी रख रही थीं जैसे कोई वकील अपने मुवक्किल को खुश करने के लिए बहुत जोर-जोर से महत्वहीन बातें कोर्ट में बोलता हो। महिलाओं को अपने शरीर के विषय में निर्णय करने की पूर्ण स्वतंत्रता हो, यह बेसिर पैर की बात है, क्योंकि परिवार एक संगठन है जिसका एक अनुशासन है। यदि आपको पारिवारिक अनुशासन स्वीकार नहीं है, तो परिवार से अलग होकर अकेले रहिए। कोई व्यक्ति किसी राजनीतिक दल का सदस्य हो या मंत्री मंडल का ही सदस्य हो, किन्तु अनुशासन में नहीं रहूंगा। यह असंभव मांग है। अब तक समाज इन आधुनिक महिलाओं के हो-हल्ले पर यह मानकर चुप रहा कि ये दो-चार महिलाएं बेकार की बकबक करती रहती हैं। इनका कोई महत्व नहीं। किन्तु अब जब इनके दबाव में सरकार कानून भी बनाने लगी, तो इन परिवार व्यवस्था-समाज व्यवस्था तोड़क महिलाओं के विरुद्ध परिवार व्यवस्था-समाज व्यवस्था समर्थक व्यक्तियों को सतर्क तो होना ही चाहिए, क्योंकि समाज की चुप्पी को ये आधुनिक महिलाएं कमजोरी समझने लगी हैं। एक कहावत है– सतवन्ती शर्माय चले, वैष्या ठनकावे बीच बाजार। स्वाभाविक है टीवी वाले अथवा अन्य प्रचार माध्यम इनके कथन को जोर-शोर से उठाएँगे भी। यह भी संभव है कि इन महिलाओं के संगठित होने के कारण राजनेता या न्यायालय भी उनके एकपक्षीय हल्ले से प्रभावित हो जाएं। किन्तु समाज इस तरह परिवार व्यवस्था तोड़क प्रयत्नों को चुपचाप नहीं देखेगा।

13.**उदय करण सुमन, रायसिंह नगर, जिला- गंगानगर, राजस्थान – नवम्बर** 2013

प्रश्न – आप लिखते हैं कि महिलाओं का विवाह किसी व्यक्ति से करने की अपेक्षा परिवार से करने की व्यवस्था करनी चाहिए। छोटा भाई परिवार की अनुमति से बड़े भाई की पत्नी का उपयोग भी कर सके जबतक उसकी शादी न हो जाए।

इस विचार से लगा जैसे नारी एक जीवित, प्राणवान, ऊर्जा-संपन्न मानवीय जीवन से ओत-प्रोत व्यक्तित्व नहीं बल्कि उपयोग की चेतना-शून्य कोई कठपुतली है, जिसे पुरुष जब चाहे नचा लें।

मेरे मन में ऐसे कुछ विचार उत्पन्न हुए हैं जिनका समाधान आप दे सकें तो आभारी होऊँगा।

1.नारी कमनीयता एवं मातृत्व गुणों के कारण पुरुषों से कहीं अधिक श्रेष्ठ है, फिर उसे इस प्रकार उपयोग की वस्तु की तरह इस्तेमाल करना कहाँ तक न्याय संगत है?

2.मान लो किसी परिवार के चार भाई बड़े भाई की शादी हो जाने के पश्चात तीन छोटे भाई परिवार की अनुमति से उसका उपयोग करने लगें, तो नारी जीवन नरकीय नहीं हो जाएगा?

3.चारों भाइयों की शादी हो जाने के पश्चात भी दूसरे-तीसरे भाई जो नारी का उपयोग करते रहे, फिर ऐसा नहीं करेंगे – इस व्यवस्था पर अंकुश कैसे लगेगा?

4.बड़ा भाई जिसकी पत्नी का उपयोग छोटे भाई निरंतर करते रहे, वह छोटे भाई की पत्नियों का उपयोग करना चाहेगा, तो परिवार उसे किस आधार पर रोकेगा?

5.बड़े भाई का विवाह तो हो गया, शेष भाइयों के विवाह में कोई व्यवधान पैदा हो जाए, तो क्या जीवन भर शेष सभी भाई बड़े भाई की पत्नी का उपयोग करते रहेंगे? ऐसे में संतान के पितृत्व की पहचान कैसे होगी तथा संपत्ति का बटवारा कैसे होगा?

6.मान लो चारों की शादी हो भी जाए, रूप, गुण एवं यौवन के कारण जो पत्नी अधिक आकर्षक होगी, सभी भाई क्योंकि पहले भी उपयोग करते रहे हैं, बाद में उसका सामुदायिक उपयोग करना चाहेंगे, तो उन्हें कौन रोकेगा?

आज भी कन्या भ्रूण हत्या के कारण चालीस लाख कन्याओं को कोख में मार दिया जाता है। जब एक पत्नी का उपयोग दूसरे भाई भी करने लगेंगे, तो माँ-बाप ऐसी स्थिति में न चाहते हुए भी भ्रूण हत्या करने लगे। तो स्थिति में कितनी विस्फोट हो जाएगी। कौन चाहेगा कि एक पत्नी परिवार की पत्नी भी हो?

उत्तर – स्त्री और पुरुष के आपसी संबंध एक दूसरे के पूरक के रूप में होते हैं। स्त्री को पुरुष की आवश्यकता होती है तथा पुरुष को स्त्रियों की। इस आवश्यकता की पूर्ति की स्वच्छंदता पर नियंत्रण के लिए ही विवाह का सामाजिक बंधन लगाया गया। सामान्य स्तर पर एक पुरुष तथा एक स्त्री की व्यवस्था ही आदर्श मानी जाती है। किन्तु विशेष स्थिति में पुरुष या स्त्री में से कोई एक की संख्या अधिक हो जाती है तथा उसके परिणाम स्वरूप कुछ स्त्री या पुरुष अविवाहित रहने लगते हैं, तो ऐसे समय में समाज की कुछ व्यवस्था करनी पड़ती है। ऐसी ही आपातकालीन व्यवस्थाओं में बहुपत्नि प्रथा या बहुविवाह, कन्या भ्रूण हत्या, सती प्रथा, देव दासी प्रचलन आदि को एक बुराई होते हुए भी स्वीकार किया गया। इसी तरह जब महिलाओं की संख्या कम तथा पुरुषों की बढ़ जाती थी, तब नगरवधू जैसी बुराइयों को भी स्वीकार

करना पड़ता था। उस समय वैश्यावृत्ति जैसी बुराइयों में भी ढील देनी पड़ती थी। परिस्थिति के अनुसार आदर्शों में संशोधन की परंपरा रही है। वर्तमान समय में महिलाओं का अभाव है। पुरुष कुंवारे रह रहे हैं। बलात्कार बढ़ रहे हैं। यदि किसी बुराई को आपातकालीन व्यवस्था के रूप में स्वीकार नहीं किया गया, तो समाज में कुछ वर्षों बाद महिलाओं की छीना-झपटी होगी। महिलाओं के लिए युद्ध होंगे, जिन्हें हम अधिक बुराई के रूप में स्वीकार करने को बाध्य होंगे। इस दृष्टि से ही मैंने यह सुझाव दिया है। यह कहना पूरी तरह गलत है कि पुरुष अपनी वासना पूर्ति के लिए महिलाओं का उपयोग करते हैं। यदि यह बात सच होती तो अनेक लड़कियां पुरुषों के साथ परिवार छोड़कर जाने को तैयार नहीं होतीं। जितनी आवश्यकता पुरुषों को है, उतनी ही आवश्यकता महिलाओं को भी है। पुरुषों के खिलाफ किया जाने वाला दुष्प्रचार घातक परिणाम देगा। सेक्स एक मात्र ऐसी क्रिया है, जिसमें संलग्न दोनों पक्ष एक साथ समान संतुष्ट होते हैं। यदि आपको मेरे सुझाव की अपेक्षा कोई और अच्छा सुझाव समझ में आता है तो आप देने की कृपा करें। यदि वेश्यालयों का प्रचलन बढ़ाया गया तो वह भी एक अच्छा सुझाव हो सकता है, किन्तु वह सुझाव मेरे सुझाव से अधिक बुरा होगा।

आपने संतान का प्रश्न उठाया है। मेरे विचार से संतान तो किसी भी परिवार में किसी दम्पत्ति की नहीं होती। कोई भी संतान जन्म लेते ही उस परिवार का सदस्य है जिसमें उसने जन्म लिया। आपने प्रश्न उठाया है कि यदि विवाह के बाद ऐसा अनैतिक संबंध चलता है तो क्या होगा। मेरे विचार से यदि ऐसा होता है तो वह परिवार की आंतरिक समस्या होगी, समाज की नहीं। जब तक परिवार का कोई सदस्य इस संबंध में समाज के पास शिकायत नहीं करता, तब तक समाज को उसके आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

सम्पत्ति के बटवारे के विषय में आपने कुछ प्रश्न उठाए हैं। सम्पत्ति तो पूरे परिवार की सामूहिक होगी, जिसमें परिवार के प्रत्येक सदस्य का समान अधिकार होगा। नई व्यवस्था में व्यक्ति समाज की एक इकाई न होकर परिवार की इकाई होगा और परिवार समाज का। महिलाओं का अभाव महिलाओं की मांग बढ़ा देगा। महिलाओं के लिए दहेज प्रचलित हो जाएगा। कन्या भ्रूण हत्या अपने आप रुक जाएगी। थोड़ा सा समाज में महिलाओं का महत्व बढ़ने दीजिए, आप देखेंगे कि महिलाओं का अभाव अपने आप कम होने लगेगा।

मेरा यह नहीं कहना है कि आदर्श व्यवस्था मानकर समाज प्रोत्साहित करे, क्योंकि यह समाज का विषय न होकर परिवारों का आंतरिक मामला है। मैं तो सिर्फ इतना ही कह रहा हूँ कि सेक्स को एक सीमा से अधिक संवेदनशील मुद्दा न बनाया जाए। साथ ही मेरा यह कथन है कि यदि मजबूरी में किसी परिवार में गुप्त रूप से ऐसी व्यवस्था होती है, तो समाज में इसकी आलोचना न की जाए। मैं इसे आपातकालीन व्यवस्था के रूप में देख रहा हूँ, न कि परंपरा के रूप में। मैं इस व्यवस्था को प्रचारित भी नहीं करना चाहता। मैं तो सिर्फ इतना ही चाहता हूँ कि मजबूरी में यदि ऐसा होता है, तो इसे होने दिया जाए। फिर भी यदि इससे अच्छी कोई व्यवस्था का सुझाव आता है, तो मैं उस पर भी चर्चा करने के लिए तैयार हूँ।

14.डॉ. पुनम शर्मा, रतनमठ, चुरू, राजस्थान – नवम्बर 2013

प्रश्न – आपके विचार सुलझे हुए होते हैं। आप बताने की कृपा करें कि आज बालिकाओं की स्थिति जो है उसमें संपूर्ण स्त्री जाति का वजूद खतरे में है। इस संबंध में आपका विचार क्या है?

उत्तर :– जब समाज में महिलाओं की संख्या पुरुषों से अधिक होती है, तो महिलाओं का सम्मान घटता है; और जब महिलाओं की संख्या कम होती है, तो महिलाओं का सम्मान बढ़ता है। जब महिलाएं अधिक हो गईं, तब बालिका हत्या, दहेज, विधवा विवाह पर प्रतिबंध, सती प्रथा, देव दासी प्रथा, बहुविवाह जैसी भयानक कुरीतियों ने जन्म लिया। वर्तमान समय में ऐसी कुरीतियों का ही परिणाम है कि परिवार में लड़कियां बोझ बनती चली गईं तथा उनकी आबादी भी घटने लगी। आज ऐसी भयानक कुरीतियों में से अनेक का तो लोप हो गया है तथा कुछ आंशिक रूप से हैं, जो थोड़ा सा जनसंख्या का अनुपात बदलने से अपने आप समाप्त हो जाएंगी।

दहेज प्रथा का तो यह हाल है कि अनेक गरीब परिवारों के माता-पिता को लड़कियों के बदले लड़के वाले दहेज देना शुरू कर दिया है। मैं स्पष्ट रूप से देख रहा हूँ कि लड़कियों की घटती जनसंख्या ने जाति प्रथा को भी चूर-चूर करना शुरू कर दिया है। अगले पाँच वर्षों में ही जाति प्रथा टूटनी शुरू हो जाएगी। अतः महिलाओं की घटती आबादी यदि कोई समस्या है, तो कोई समाधान भी है। यह जरूर है कि प्रकृति द्वारा किए जा रहे समाधानों का कुछ राजनेता या सामाजिक कार्यकर्ता श्रेय लेना शुरू कर देते हैं। मैं स्पष्ट जानता हूँ कि दहेज के खिलाफ बनाए गए कानूनी या सामाजिक विरोधों से दहेज प्रथा नहीं रुकी है। उल्टा दहेज का हल्ला करके लड़की वालों का मनोबल तोड़ना सामाजिक हानि है। फिर भी ये अज्ञानी लोग ऐसा करते रहते हैं।

कन्या भ्रूण हत्या पर किसी प्रकार के किसी प्रतिबंध की आवश्यकता नहीं है। अधिक से अधिक एक-दो प्रतिशत ही महिलाओं की औसत आबादी घटेगी, उसके बाद अपने आप सामाजिक नियम बदलेंगे। लड़कियों के माता-पिता का मनोबल ऊँचा होगा। हो सकता है कि कुछ मात्रा में घर-जमाई की प्रथा भी शुरू हो जाए। क्या होगा, पता नहीं, किन्तु कुछ न कुछ अवश्य होगा। इसके लिए निश्चिंत रहें। स्त्री जाति का वजूद खतरे में पड़ेगा, तो पुरुष उससे अछूते नहीं रहेंगे, क्योंकि न पुरुष अकेले संतान पैदा कर सकते हैं, न स्त्री। अतः इस समस्या को बहुत बड़ी समस्या के रूप में मानने या प्रचलित करने से लाभ कम और हानि अधिक होगी।

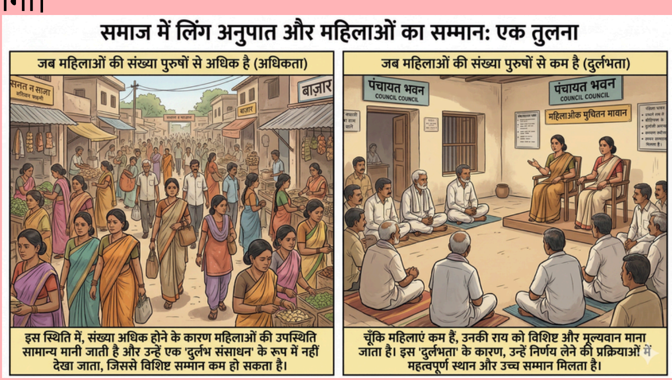

15.वासुदेव रंगवाला, तिरुपुर, तमिलनाडू – जुलाई 2017

प्रश्नः –आपके संपादन में प्रकाशित होने वाली पत्रिका ज्ञानतत्व पत्रिका बराबर प्राप्त हो रही है। यथाशक्ति पढ़ने का प्रयास रहता है। पत्रिका में कई प्रकार की नई जानकारियाँ तथा जीवनोपयोगी तत्व पढ़ने को मिलते हैं। इस बार अंक 03, वर्ष 14 पढ़ा, उत्सुकता हुई पत्र लिख रहा हूँ।

पत्रिका महिलाओं के लिए बहुत उपयोगी तथा शिक्षाप्रद भी है। बार बालाओं और वैष्यालयों के बारे में सरकार की नीति सरल होती जा रही है। राजा-महाराजाओं के समय भी वेश्यालय, नर्तकियों का चलन था। उन्हें आवश्यक माना जाता था। राज दरबारों में भी नर्तकियों का प्रोग्राम होता रहता था तथा सभी दरबारी आमंत्रित रहते थे। अब राजघराने ही समाप्त हो गए हैं। हर शहर में वेश्यालयों का मोहल्ला होता था। जनता किसी कारण अगर सेक्स की भूख नहीं मिटा पाती तो फिर इनका उपयोग होता रहता था। अभी कुछ सालों पहले भी शहरों में यह इंतजाम रहता था। पिछले 25-30 सालों में यह रोक अवैध मान्यता के कारण बंद से ही है। अब यह धंधा बड़े-बड़े लोगों में शुरू हो गया है. इस धंधे में बड़े घरों की औरतों का काफी सहयोग रहता है। पैसा तथा सेक्स की दोनों प्रकार की तृप्ति होती है। महीनों साथ रहते हैं, उनका बाद में मनमुटाव, पैसों की लेन-देन हो जाता है, तो लड़की उनके घर से भाग कर पुलिस में चली जाती है और वही बलात्कार का रूप ले रहे हैं। कहाँ तक सही है, विचार करने का मामला है।

आजकल पत्रिकाओं में टी.बी. आदि में खबरें पढ़ने को मिलती हैं कि 6-7 साल की बच्चियों के साथ बलात्कार हो रहा है। बड़ी विचारणीय बात है। 6-7 साल की बच्ची के साथ कोई पुरुष कैसे अपनी सेक्स की भूख मिटा पाएगा। किन्तु यह ऐसा क्यों हो रहा है? इस समय वह नशे में होता है और नशे की हालत में ऐसा कुकर्म कर बैठता है। नशा उतरने के बाद या फिर पुलिस द्वारा पकड़े जाने पर भी बहुत अफसोस तथा पछतावा करता होगा। परन्तु नशे पर ही कंट्रोल नहीं हो रहा है।

शादी समारोह, उत्सव, रिश्तेदारों का निमंत्रण, अंदर पार्टियों में आजकल फैशन, दिखावा, आकर्षण, दिखने के लिए अर्धनग्न, वेषभूषा, और उछलकूद, गाना-बजाना, पार्टी में मद्यपान, मांसाहार आदि के जोश में अपना होश-हवास भूल जाते हैं और ऐसी हालत में सेक्स अपराध होना संभव है।

विवाहित पति-पत्नी के बीच बिना अनुमति के शारीरिक संबंध को अगर बलात्कार समझा जाएगा, तो क्या होगा। कोई पुरुष अपनी पत्नी के साथ जबरदस्ती या समझ के बाद सेक्स भी भूख नहीं मिटाएगा, तो फिर क्या वह अपनी भूख मिटाने के लिए दूसरी औरत के द्वार जाने को मजबूर नहीं होगा? वही बलात्कार का रूप है।

उत्तरः– आपने अच्छी विवेचना की है। यदि कुछ स्त्री-पुरुष, अर्धनग्न वेषभूषा, उछलकूद, गाना-बजाना और उत्तेजक कार्य स्वेच्छा से करते हैं, तो उसमें हमें या समाज को क्यों आपत्ति होनी चाहिए। किसी को सेक्स से दूरी बनाने से सुख प्राप्त होता है और किसी को सहमत सेक्स से सुख प्राप्त होता है। तो हमारा कर्तव्य है कि हम दूसरों को समझा तो सकते हैं, किन्तु बाधा नहीं पैदा कर सकते। न ही कोई कानून बना सकते हैं। यदि कोई ब्लू फिल्म एकांत में देखता है, तो मेरे विचार से कोई प्रतिबंध नहीं होना चाहिए।

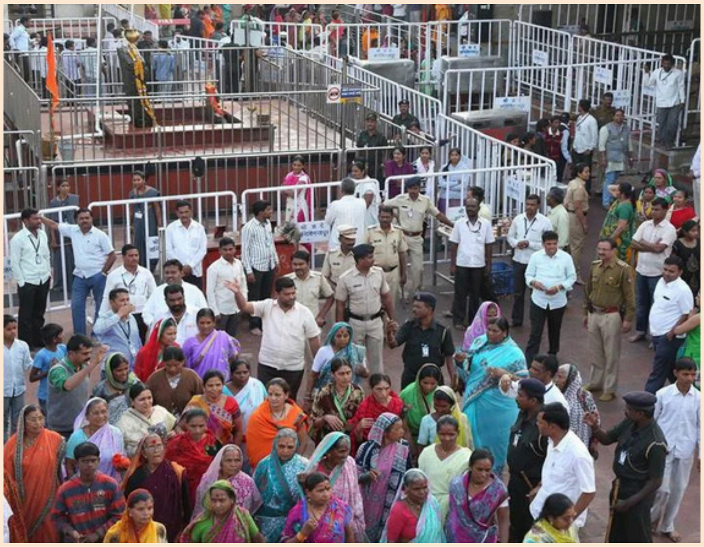

18.प्रश्न – महाराष्ट्र के एक मंदिर में कुछ निश्चित उम्र तक की महिलाओं का प्रवेश वर्जित रहा है। इस नियम के विरुद्ध कुछ महिला संगठनों ने बलपूर्वक प्रवेश करने का प्रयास किया। इसके पक्ष-विपक्ष में दो गुट बन गए, और दोनों गुटों में बलप्रयोग प्रारंभ हो गया। देश भर में इस घटना के पक्ष-विपक्ष में विवाद शुरू हो गया। विचारणीय प्रश्न है कि इस विवाद में गलत कौन है, और किसे दंडित होना चाहिए।

उत्तर:- ऐसे ही विवादास्पद मुद्दे मुसलमानों में भी यदा-कदा उठते रहते हैं कि महिलाओं को नमाज़ पढ़ने के किस सीमा और कहाँ-कहाँ अधिकार हैं। सिखों के धर्म स्थानों में प्रवेश के लिए भी कुछ नियम बने हुए हैं। अनेक हिंदू मंदिरों में गैर हिंदुओं का प्रवेश वर्जित है। अनेक मंदिरों में सिर्फ महिलाओं को ही प्रवेश की अनुमति है और पुरुष उन मंदिरों में नहीं जा सकते। राजस्थान के पुष्कर में सावित्री का ऐसा ही मंदिर है। आंध्र प्रदेश के विशाखापत्तनम के कामाख्या देवी का मंदिर अथवा उत्तर प्रदेश के चंदौली जिला का मंदिर सकलडीहा में स्थापित मंदिर में भी पुरुष प्रवेश वर्जित हैं। और कहीं-कहीं ऐसे नियम हैं कि धर्मस्थान में प्रवेश के पूर्व प्रवेशकर्ता की पोशाक कैसी होनी चाहिए। इस तरह के प्रश्न भी अनेक बार विवाद पैदा करते रहते हैं या भविष्य में कर सकते हैं।

विचारणीय प्रश्न यह है कि उक्त मंदिर की व्यवस्था का अंतिम अधिकार किसका है –

1.**ट्रस्ट का**
2.**हिन्दू समाज का**
3.**सम्पूर्ण समाज का**
4.**सरकार का**

यह भी विचार करना पड़ेगा कि मंदिर की सम्पत्ति किसके अधिकार क्षेत्र की है। मेरे विचार में मंदिर संबंधी व्यवस्था में अंतिम निर्णय करने का अधिकार न तो सम्पूर्ण समाज का है न ही सरकार का। यह तो ट्रस्ट निर्णय कर सकती है या स्थानीय हिन्दू समाज। यदि नियम गलत है तो गलत नियम को बदलने का तरीका क्या है और कौन बदलेगा यह स्पष्ट करना आवश्यक है।

महाराष्ट्र के मंदिर में या अन्य स्थानों पर भी नियमों में बदलाव

के लिए जिस तरह की गुंडागर्दी करने का प्रचलन बढ़ रहा है वह घातक है। गुंडागर्दी करने वाले भी अपने को राजा राममोहन राय से कम कभी नहीं कहते। ऐसे लोग यह भूल जाते हैं कि उस समय देश गुलाम था और आज स्वतंत्र। बदलाव के लिए या तो ट्रस्ट को सहमत किया जाना चाहिए था या स्थानीय समाज के हिन्दुओं के बीच जनमत जागरण द्वारा बहुमत बनाने का सहारा लेना चाहिए था। लेकिन दोनों आधारों को छोड़कर कुछ महिलाएँ वहाँ बलपूर्वक जाने और नियम तोड़ने का प्रयास करती दिखीं। यह प्रयास पूरी तरह अपराध की श्रेणी में आता है। महिलाओं को मंदिर में प्रवेश का अधिकार होना चाहिए, यह सही है, किन्तु अधिकार बलपूर्वक लेने का अधिकार किसी भी स्थिति में नहीं दिया जा सकता, यह भी सही है।

मंदिर प्रवेश का अधिकार देना समाज का कर्तव्य है, किन्तु प्रवेशकर्ता का अधिकार नहीं। क्योंकि प्रवेश संबंधी नियम बने हुए हैं, और नियमों को नियमानुसार बदले बिना तोड़ने के परिणाम अच्छे नहीं हो सकते।

महाराष्ट्र के मंदिर में प्रवेश करने वाली महिलाओं के विषय में ऐसी भी बात सामने आई है कि उनमें से अधिकांश का मंदिर में पूजा-पाठ से कोई संबंध नहीं है। उस क्षेत्र के शनिदेव के मंदिर को छोड़कर अन्य मंदिरों में प्रवेश वर्जित नहीं है। सर्वे किया जाना चाहिए कि इन नियम तोड़ने वाली महिलाओं में से कितनी कभी वर्ष में एक बार भी किसी अन्य मंदिर में जाती रही हैं। यदि एकाएक इन महिलाओं में धर्म और मंदिर के प्रति इतनी अपार श्रद्धा उमड़ी है तो यह हिन्दू धर्म के लिए एक शुभ लक्षण है। और यदि इनमें से अधिकांश का मंदिर पर विश्वास नहीं, तो ऐसी छिटपुट समाज तोड़क महिलाओं को महत्व देने वालों की भी नियत पर संदेह पैदा होता है।

महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री ने ऐसी समाज तोड़क महिलाओं को महिलाओं का प्रतिनिधि मानने की गंभीर गलती की है। यदि मुख्यमंत्री इस संबंध में जनमत जानना चाहें तो उस क्षेत्र के 25 से 50 गांवों की सम्पूर्ण आबादी की हिन्दू महिलाओं के बीच मतदान करा कर देखें। आजकल एक-दो प्रतिशत आधुनिक महिलाएँ राजनेताओं को अपने साथ जोड़कर जिस तरह धींगामुस्ती का वातावरण बना रही हैं, उसमें भले ही अभी वे सफल हो जाएँ, किन्तु यह परंपरा सम्पूर्ण समाज के लिए घातक होगी। चाहे वह हिन्दू समाज हो या कोई अन्य समाज।

समय आ गया है कि भारत की 98 प्रतिशत शांतिप्रिय महिलाएँ इन दो प्रतिशत परिवार तोड़क, समाज तोड़क, आधुनिक महिलाओं के विरुद्ध एकजुटता का वातावरण बनावें। समाज को महिला और पुरुष के बीच बांटने का प्रयत्न राजनेताओं के लिए लाभकारी हो सकता है, कुछ आधुनिक महिलाओं को भी हाईलाइट होने का अवसर दे सकता है, किन्तु सम्पूर्ण समाज के लिए घातक ही होगा। मेरा विचार है कि महाराष्ट्र के इस मंदिर प्रवेश मामले के निपटारे के लिए मंदिर के आसपास के 50 गांवों की महिलाओं का जनमत मतदान द्वारा लिया जाना चाहिए, और तब इस विवाद का वास्तविक समाधान हो जाएगा। अभी जैसा लक्षण दिख रहा है, उसके अनुसार ये महिलाएँ अपने उद्देश्य में सफल हो जाएँगी।

19.**प्रश्न**:- – **आठ मार्च अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस है। आप इस दिन समाज को क्या संदेश देना चाहेंगे**? (**अप्रैल** 2016)

उत्तर- आठ मार्च अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस था। इस समय हमारे परिवार में कुल तेरह सदस्य हैं। सबने एक साथ बैठकर अपने परिवार के निम्नलिखित आंतरिक नियम बनाए –

1.**नाम: कांवटिया परिवार एक होगा।**

2.**कानूनी मान्यता: परिवार पंजीकृत होगा।**

3.**समानता: परिवार की सम्पत्ति संयुक्त होगी।**

प्रत्येक सदस्य को सम्पत्ति में अलग होते समय समान हिस्सा मिलेगा। परिवार का कोई सदस्य परिवार में रहते हुए परिवार की अनुमति के बिना कोई सम्पत्ति या व्यवस्था पृथक नहीं कर सकेगा। ऐसी पृथक सम्पत्ति भी किसी विभाजन के समय परिवार की संयुक्त सम्पत्ति में शामिल मानी जाएगी।

4.**व्यवस्था**:

1.**परिवार का एक प्रमुख होगा जो परिवार में सबसे अधिक उम्र का व्यक्ति होगा।**

2.**परिवार प्रमुख परिवार के सदस्यों की सहमति से एक परिवार का व्यवस्थापक नियुक्त करेगा।**

3.**परिवार का कोई भी सदस्य कभी भी अपना हिस्सा लेकर अथवा परिवार कभी भी उसे अपना हिस्सा देकर अलग नहीं हो सकता।**

4.**आठ वर्ष से कम उम्र का बालक अलग होता है, या किया जाता है, तो पंजीकरण अधिकारी की स्वीकृति आवश्यक होगी।**

5.**अन्य सभी विषयों पर परिवार के लोग मिलकर आंतरिक नियम बना सकते हैं।**

समीक्षा: इस व्यवस्था का उद्देश्य यह है कि परिवार में कानून का हस्तक्षेप कम हो। महिलाओं को भी सम्पत्ति तथा व्यवस्था में समान अधिकार मिले। परिवार के आंतरिक संबंधों में कानून का हस्तक्षेप न हो। इसका अर्थ हुआ कि कानून की दृष्टि में परिवार में रहते हुए न कोई माता-पिता होगा, न कोई भाई-बहन, न पति-पत्नी। ये सारे रिश्ते परिवार के आंतरिक होंगे। कानून की नजर में सब या तो एक व्यक्ति होंगे अथवा एक परिवार के एक सदस्य। लड़की ससुराल जाते समय अपना हिस्सा लेकर जाएगी और बहू या बालक जन्म लेते ही परिवार की सम्पत्ति में बराबर के हिस्सेदार हो जाएंगे। यह नई व्यवस्था हमारे परिवार में आज से ही लागू हो गई है। शीघ्र ही इसे कानूनी मान्यता भी मिल जाएगी।

परिवार के किसी सदस्य की परिवार से अलग होने के पूर्व मृत्यु होती है, तो उसका हिस्सा अपने आप परिवार में ही रहेगा। अर्थात् कोई व्यक्ति परिवार में रहते हुए किसी सम्पत्ति पर कोई दावा नहीं रख सकेगा। यदि किसी का कोई प्रश्न हो या सुझाव हो, तो भेज सकते हैं।

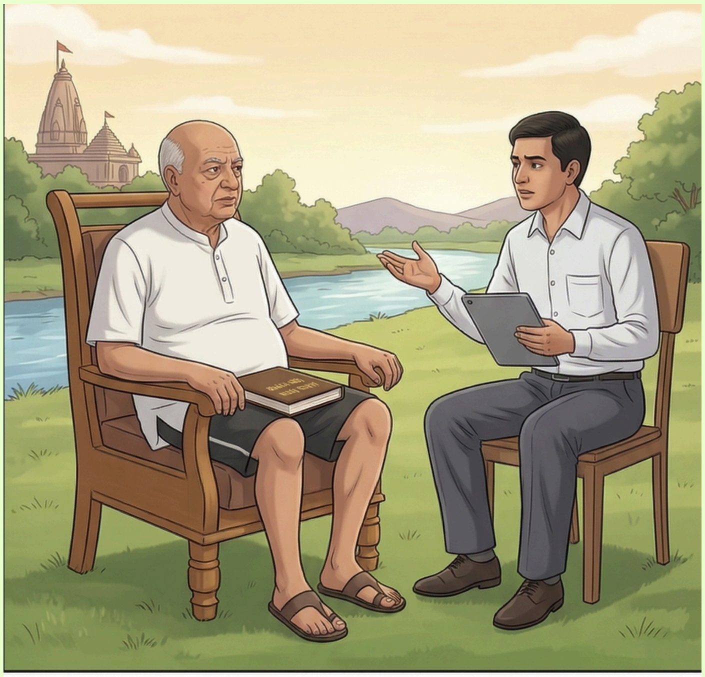

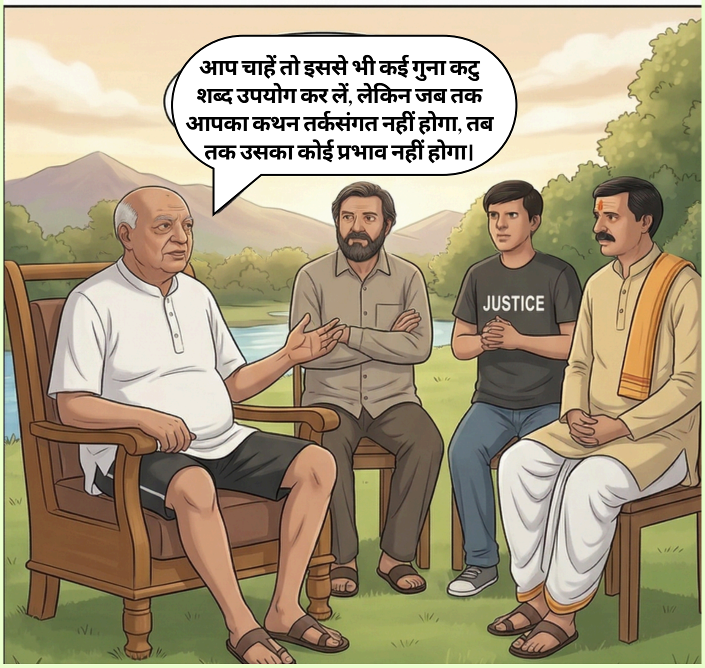

20.**बेचू बी. ए., कुषी नगर, उत्तर प्रदेश, जून** 2014

प्रश्न: आपने जिस तरह से विषय 'ऐसा देश हो मेरा' के तहत जो 33 बिन्दुओं का छिद्रान्वेषण किया है, उसमें एक-दो बिन्दुओं को छोड़ दिया जाए तो सभी के सभी विचारों से मैं सहमत नहीं हूँ। मैं कहने में काफी दुसाहस कर रहा हूँ कि आप जैसा चिंतनशील प्राणी इस तरह की सोच व अपने विचार समाज को देगा। ऐसी कल्पना न थी। अब तो ज्ञानतत्व पढ़ना भी नहीं चाहता। ज्यादा कुछ और कहूँ तो निश्चित आप नाराज होंगे। इसके अलावा जो कुछ शेष था, चलते-चलते 290वें अंक के पृष्ठ के 21 भाग में पूरा कर दिए। यदि किसी पुरुष ने इन आधुनिक... तो ये आधुनिक महिलाएँ इतने जोर से चिल्लाना शुरू कर देती हैं कि कोई उनके साथ बलात्कार हो रहा हो। आदरणीय मुनि जी, जिस तरह से आपने 286वें अंक में यह लिखा है कि आपके कटु शब्दों से मेरे मन में आपके प्रति अच्छा ही संदेश जाएगा, तभी इतने कटु शब्दों का इस्तेमाल करने में मैं कोई गुरेज नहीं किया।

अगर यह सब ज्ञानतत्व में आपके विचार हैं तो बहुत ही गलती है। जो 286 या 290 अंक में आप द्वारा जो भी विचार प्रकाशित हैं, वह ज्ञानतत्व के लिए शर्मनाक है। उन शब्दों को बड़े ठीक ढंग से दूसरे शब्दों में लिखा जा सकता था। लेकिन ऐसा न कर सीधे-सीधे लाठी मारने का कार्य किए हैं। निश्चित उस अंक के विचारों से हजारों-हजार पाठकों व लोगों की भावनाओं पर ठेस लगी है। यह अलग है कि तमाम पाठकों ने यह दुसाहस मेरे जैसे न किया हो और न करें।

मैं और कुछ भी अपना मत देना चाहता था, लेकिन ज्यादा विचार में स्वयं विचारक विचरण करने लगता है और ऐसी में टे^a^क बदल जाता है। हमें विश्वास नहीं है कि यह कटु पत्र आप अपने ज्ञानतत्व में स्थान देंगे

ही। आखिर मैं एक प्रश्न के साथ अपनी बात समाप्त करूंगा कि एक महान विचारक व समाज सुधारक मुनि जी के वचन इस तरह के भी होते हैं।

इसके अलावा मैं परम आदरणीय आचार्य पंकज जी को धन्यवाद देना चाहता हूँ कि उन्होंने भी समीक्षा देने की अपील की है। इन्हीं शब्दों के साथ मैं कलम को विराम दे रहा हूँ। अगर पत्र में कोई ऐसी बात कह डाली गई हो, जिससे आपको कष्ट हुआ हो तो मैं क्षमा प्रार्थी हूँ।

उत्तर: ज्ञानतत्व अंक 286 तथा 290 को पढ़कर आपकी भावनाओं को भारी ठेस लगी। यह अच्छी बात है। भावनाओं और विचारों के बीच टकराव हो तो विचार महत्वपूर्ण होते हैं, भावनाएँ नहीं। अंक 286 पढ़कर आपको ऐसा लगा कि अब ज्ञानतत्व पढ़ना बंद कर दूँ, लेकिन मैं जानता हूँ कि आप ज्ञानतत्व पढ़ना बंद नहीं करेंगे और आप अब भी पढ़ रहे हैं। यह अच्छी बात है।

आपने पूरे पत्र में सिर्फ नाराजगी व्यक्त की है, लेकिन यह कहीं नहीं लिखा कि मेरी लिखी हुई कौन सी बात क्यों गलत है। मैंने जो कुछ लिखा है वह अंतिम नहीं है, किन्तु उसमें कोई संशोधन आपकी या ऐसी ही कुछ साथियों की नाराजगी से नहीं होगा। आप चाहें तो इससे भी कई गुना कटु शब्द उपयोग कर लें, लेकिन जब तक आपका कथन तर्कसंगत नहीं होगा, तब तक उसका कोई प्रभाव नहीं होगा।

हमारे अनेक पाठकों ने अंक 286 की बहुत प्रशंसा की है। मैंने किसी प्रशंसक का पत्र नहीं छापा। इससे आपको भ्रम हो गया कि हजारों-हजार पाठकों के मन को ठेस लगी है। मैं स्पष्ट कर दूँ कि ज्ञानतत्व के अधिकांश पाठक भावनाओं की जगह विचारों को महत्व देते हैं। आप जैसे इक्का-दुक्का पाठक ही हैं जो इस तरह उद्वेलित होते हैं। मेरा आपसे आग्रह है कि मन को शांत करिए। शांत मन से वे बातें लिखिए जो आपके विचार से गलत हैं।

आपने ज्ञानतत्व का एक अधूरा उद्धरण दिया है जिससे भ्रम होता है कि न लिखी गई बात कोई विशेष गलत होगी। मैं पूरा वाक्य लिख देता हूँ –

"देखा जा रहा है कि अधिकांश आधुनिक महिलाएँ दिन-रात महिला-पुरुष अविश्वास बढ़ाने के कार्य में लगी हैं। अच्छी-अच्छी विद्वानमहिलाएँ भी आजकल सारी चर्चाएँ छोड़कर महिला

महिला शोषण या जागरण के विषय में ही कुछ अनाप-सनाप लिखती हैं और बोलती हैं। अनेक पुरुष विद्वान भी इनकी नासमझी में हाँ में हाँ मिलाते रहते हैं। यदि किसी पुरुष ने इन महिलाओं की बात के विरुद्ध कोई बात बोल दी, तो ये आधुनिक महिलाएँ इतने जोर से चिल्लाना शुरू कर देती हैं जैसे कि कोई उनके साथ बलात्कार हो रहा हो।" मैं नहीं समझा कि उपर वाले वाक्य में गलत क्या है। मध्य प्रदेश के एक मंत्री कैलाश विजयवर्गीय के साथ क्या ऐसा व्यवहार नहीं हुआ? निर्भया कांड की चर्चा के समय राजस्थान के एक विधायक के साथ भी यही हुआ। हल्ला करके लोगों की स्वतंत्र आवाज बंद कर दी गई। ए टू जेड चैनल में बहस के बीच में भी ऐसी महिलाएँ आम तौर पर इसी तरह चिल्लाती देखी जा सकती हैं। आप लिखिए कि इस वाक्य में क्या गलत है और क्या असत्य है।

21.क्या महिलाओं के साथ समाज में भेदभाव नहीं होता है? (**मई** 2015)

उत्तर: मैं स्पष्ट हूँ कि समाज में महिलाओं के साथ पुरुषों की अपेक्षा अधिक अच्छा व्यवहार होता है। आज भी यह स्पष्ट है कि सामाजिक व्यवहार में महिलाओं को विशेष सम्मान प्राप्त है। परिवार में जो भेदभाव दिखता है, वह पुरुष प्रधान व्यवस्था का परिणाम है। यदि पुरुष प्रधान व्यवस्था की जगह परिवार को लोकतांत्रिक तरीके से मुखियों चुनने की अनिवार्य व्यवस्था दे दी जाए, तो यह भेदभाव भी खत्म हो सकता है और अधिकांश परिवारों में लोकतांत्रिक तरीके से भी पुरुष ही मुखिया चुने जाएंगे।

इसी तरह संपत्ति के मामले में भी परिवारों के अंदर झगड़ा लगाने वाले भीमराव अंबेडकर और नेहरू की भूमिका विशेष महत्वपूर्ण रही है। संपत्ति के मामले में इन लोगों ने जानबूझकर परिवारों को विभाजित करने वाली नीतियाँ बनाई और भविष्य में इन्हीं के वंशजों ने आज तक उन नीतियों को आगे बढ़ाया। आज भारत का लोकतंत्र इस परिवार तोड़क अर्थनीति को लगातार आगे बढ़ा रहा है। महिला को किस परिस्थिति में परिवार में हिस्सा मिलेगा यह बात बेचारी महिला क्या जाने? यह तो स्वयं कानून बनाने वाले भी नहीं जानते, न ही पंडित नेहरू और अंबेडकर जानते थे, और न ही नरेंद्र मोदी या प्रणव मुखर्जी। यदि नेताओं की नीयत ठीक होती तो वे परिवार की सम्पूर्ण सम्पत्ति को सामूहिक घोषित कर देते, जिसमें परिवार से अलग होते समय वह सदस्य, सदस्य संख्या के आधार पर हिस्सा ले पाता।

22.प्रश्न: लड़कियाँ परिवार में परिवार की अमानत कैसे हैं जबकि लड़के परिवार का भाग हैं?

उत्तर: परिवार व्यवस्था में यह अनिवार्य है कि स्त्री और पुरुष का शारीरिक संबंध किसी भी रूप में सपिंड न हो, अर्थात् पिता की कुछ पीढ़ियाँ तथा माता की कुछ पीढ़ियाँ छोड़कर ही हो। यह व्यवस्था सिर्फ धारणा ही नहीं है बल्कि पूरी दुनिया में इसे वैज्ञानिक मान्यता भी प्राप्त है। इसका अर्थ है कि या तो किसी परिवार की लड़की दूसरे परिवार में जाकर वहाँ किसी की पत्नी के रूप में रहे, अथवा लड़का लड़की के यहाँ जाकर वहाँ वह लड़की को पत्नी मानकर रखे।

प्राचीन समय में अनुलोम विवाह होते थे, जिसमें निम्न वर्ण की लड़की उच्च वर्ण के परिवार में जाकर रहती थी। दूसरी ओर निम्न वर्ण का लड़का निम्न वर्ण की लड़की के साथ आमतौर पर घरजमाई के रूप में रहता था। इस तरह उच्च वर्ण में सामान्यतया पुरुष प्रधान व्यवस्था थी और निम्न वर्ण में महिला प्रधान। यद्यपि यह व्यवस्था अब टूट रही है और आमतौर पर सभी वर्णों में पुरुष प्रधान परिवार व्यवस्था लागू हो रही है। फिर भी कुछ आदिवासियों में या कुछ पिछड़े क्षेत्रों में अब भी इसके अवशेष देखे जा सकते हैं।

यदि सामान्यतया लड़की का दूसरे परिवार में जाकर रहना निश्चित है, तो वह लड़की अन्य परिवार में जाने तक अमानत ही मानी जाएगी। यही कारण है कि घर में लड़का पैदा होने पर जितनी प्रसन्नता होती है, उतनी लड़की पैदा होने पर नहीं होती। इस तरह लड़का तो परिवार का हिस्सा माना जाता है और लड़की अमानत।

23.प्रश्न: आप महिला आरक्षण का विरोध करने वाले अकेले पुरुष हैं। क्या आपने गंभीरता से सोच लिया है?

उत्तर: मैं पूरी गंभीरता से सोच लिया हूँ और वह भी पूरे 30-40 वर्षों से यह निष्कर्ष निकाला हूँ कि महिला सशक्तिकरण की आवाज परिवार व्यवस्था तथा समाज व्यवस्था के लिए घातक है। न महिला सशक्तिकरण होना चाहिए, न ही पुरुष सशक्तिकरण। अब तक पुरुष सशक्तिकरण है। कुछ थोड़ी सी महिलाएँ ही सशक्त दिखती हैं, जिसमें अनेक या तो अपना परिवार तोड़कर आई हैं अथवा वे पुरुषों के समान अधिक स्वतंत्रता चाहती हैं, अथवा यह भी संभव है

कि वे महिला सशक्तिकरण का नारा लगाकर अपने परिवार की सहायता कर रही हों। तीनों में से चाहे जो भी सच्चाई हो, लेकिन यह मोड़ परिवार और समाज को नुकसान करने वाली है। सरकारों को इस मामले में सतर्क होना चाहिए था, किन्तु राजनीति से जुड़े हर व्यक्ति को इसमें सुविधा महसूस हो रही है।

मैं भले ही अकेला हूँ, किन्तु अकेला होते हुए भी सत्य से इंकार नहीं कर सकता। महिला सशक्तिकरण का नारा लगाने वालों का षड़यंत्र विफल कर देना चाहिए। मैं मानता हूँ कि किसी भी प्रकार का आरक्षण घातक है। सभी प्रकार के आरक्षण, जो अब तक लागू नहीं हो सके हैं, उनका पुरजोर विरोध होना चाहिए।

24.**प्रश्न**:- दीपिका पादुकोण ने सैकड़ों महिलाओं को साथ लेकर एक वीडियो तैयार किया, जो वायरल हो गया। इस वीडियो में उसने यह कहने की कोशिश की कि यह शरीर उसका है, शादी से पहले सेक्स करे, यह उसका हक है; शादी के बाद दूसरे पुरुष से सेक्स करे, यह उसका हक है; वह किसी महिला के साथ संबंध बनाए, यह उसका हक है; या किसी के साथ कभी भी सेक्स ना करे, यह उसका हक है; वह बच्चा पैदा करे या ना करे, यह उसका हक है। महिलाओं के हकों को लेकर उसने और भी सारी बातें कही हैं।

मजेदार बात यह है कि आज की युवाओं की पीढ़ी रियल की दुनिया के बजाय रील, यानी सिनेमाई परदे की दुनिया से ज्यादा प्रभावित होती है। लाजिमी है कि इस वीडियो का असर भी लाखों युवतियों पर हुआ होगा। दूसरी तरफ आप व्यक्ति को परिवार का हिस्सा होने के लिए मजबूर करते हैं, मगर दीपिका हैं कि आपकी बात को मानने के लिए कतई तैयार नहीं, भले ही उनके प्रेमी रणबीर कपूर के रिश्ते या उनके पिता ऋषि कपूर से रिश्ते खराब ही क्यों न हो जाएँ।

दूसरी ओर प्रसिद्ध लेखक सिद्धार्थ ने नवभारत, चार अप्रैल को एक लेख लिखकर दीपिका पादुकोण की आलोचना की कि उसका यह सोच भारतीय संस्कृति के खिलाफ है। यदि इससे प्रभावित होकर युवा लड़कियाँ "माई चॉइस" का झंडा बुलंद करने लगें, तो सोचिए कि यह समाज किस दिशा में जाएगा। महिलाओं को भोग की वस्तु मानना गलत है।

उत्तर:- मैं पहले से ही मानता हूँ कि सेक्स व्यक्ति का मौलिक अधिकार है, जिसमें उसकी सहमति से ही कोई अनुशासन निर्धारित किया जा सकता है । मैं तो यहां तक सोचता हूँ कि यदि भाई-बहन या माँ-बेटा भी समाज के अनुशासन को न मानते हुए ऐसा करें, तो उन्हें दण्डित नहीं किया जा सकता। किन्तु मेरे विचार से समाज का अनुशासन तोड़ने वालों का समाज बहिष्कार कर सकता है। यदि व्यक्ति के कुछ मौलिक अधिकार हैं तो समाज के भी अपने कुछ मौलिक अधिकार हैं। आप समाज की अनदेखी करके चलेंगे तो समाज आपका बहिष्कार कर सकता है। यदि दूसरे के घर में आग लगे और आप आग बुझाने न जाएँ, तो हो सकता है कि आपके घर में आग लगने पर शेष समाज तमाशा देखता रहे।

व्यक्ति और समाज के बीच सहजीवन की पहली पाठशाला परिवार है। किन्तु परिवार की संरचना भी सहमति से ही हो सकती है, किसी कानून से नहीं। यदि कोई व्यक्ति परिवार न बनाए तथा अकेला ही रहना चाहे, तो आप उसे सरकारी या सामाजिक अधिकारों या सुविधाओं से तो वंचित कर सकते हैं, किन्तु कोई दण्ड नहीं दे सकते। इसी तरह सिद्धार्थ की सोच भी गलत है। संस्कृति सहमति से ही स्थापित हो सकती है, किसी दबाव, कानून या नियम से नहीं।

सेक्स, बलात्कार को छोड़कर, अन्य किसी भी स्थिति में एकपक्षीय नहीं होता, बल्कि द्विपक्षीय होता है। सेक्स एकमात्र ऐसा कार्य है जो दोनों पक्षों को समान संतुष्टि देता है। अर्थात् यह क्रिया दोनों पक्षों की समान आवश्यकता है। महिलाएँ भोग की वस्तु नहीं हैं यह कहना भी उतना ही घातक है जितना यह कहना कि ये पुरुषों की भोग की वस्तु हैं।

25. **प्रश्न**: सय्यद मुबीन जेहरा ने जनसत्ता 29 मार्च में पुरुष समाज में अकेली स्त्री शिक्षक के माध्यम से आधुनिक महिलाओं के पक्ष में एक लेख लिखा है। उसका संक्षिप्त यह है कि पिछले सप्ताह से इस खबर को पढ़कर मैं बेचैन हूँ कि मिस्र में एक महिला को अपना घर चलाने के लिए वर्षों पुरुष बनकर रहना पड़ा, और वह भी तैंतालीस वर्ष तक। अब मिस्र में इस महिला को बहुत मान-सम्मान दिया जा रहा है। लेकिन यह पूरी कहानी मिस्र के समाज की खोखली मानसिकता को भी दर्शाती है कि जहाँ एक अकेली महिला तभी अकेले जीवित रह सकती है और अपने परिवार का ध्यान रख सकती है, जब वह पुरुषों जैसी बन जाए। सवाल यह भी है कि जब महिला अपने सजने-संवरने के शौक छोड़कर पुरुष बन जाती होगी, तब उस पर क्या बीतती होगी? यह इस बात का सबूत भी है कि अगर कोई औरत कर्तव्य पालन की भावना के साथ जीना चाहे, तो समाज के सभी ढकोसलों, रस्म-रिवाजों को किनारे करते हुए वह अपना अलग रास्ता भी बना सकती है। मिस्र की यह गरीब औरत, जिसका नाम खबरों में सीसा जाबिर बताया गया है, चालीस साल से अधिक समय तक अपनी रोजी कमाने के लिए पुरुष के भेष में काम करती रही। उसकी आयु अब पैंसठ वर्ष के करीब है। इक्कीस साल की उम्र में पति की मृत्यु के बाद उसने अपनी अकेली संतान के लिए पुरुषों की तरह जीवन जीने का निर्णय किया। ऐसा नहीं कि सीसा जाबिर ने पुरुष बनकर किसी कार्यालय में काम नहीं किया, जहाँ आराम से कागजों में सिर खपा कर वेतन मिल जाता, बल्कि उसने जो भी काम किया उसमें पुरुषों जैसी शक्ति और क्षमता की जरूरत पड़ती थी। उसने

कभी ईंट-भट्ठों पर काम किया, कभी खेतों में मजदूरी की, कभी सिर पर मलबा ढोया और कभी सड़कों पर लोगों के जूते पॉलिश किए। सवाल है कि घर चलाने और अपनी बेटी के पालन-पोषण के लिए क्या वह यही सब काम एक महिला के नाते नहीं कर सकती थी? क्या जरूरत थी उसे तैंतालीस वर्ष तक पुरुषों जैसी बनकर रहने की।

सबसे बड़ी समस्या तो निश्चित रूप से उसके लिए यही रही होगी कि कम उम्र में विधवा हो जाने के कारण पुरुषों की बुरी नजर उसकी ओर हो सकती है। यह स्पष्ट है कि महिलाओं के लिए शिक्षा कितनी जरूरी है। आप पढ़-लिख कर नौकरी ही करें, जरूरी नहीं, मगर कठिन परिस्थितियों में शिक्षा सबसे बड़ा सहारा हो सकती है। सीसा जाबिर की हिम्मत और हौसले को सलाम करना होगा कि उसने उस मिस्री समाज में संघर्ष करते हुए पुरुषों की तरह जीवन बिताया, जहाँ आज भी महिलाओं को विभिन्न धार्मिक रस्मों के नाम पर दबाया जाता है। लेकिन प्रश्न है कि कोई समाज अगर महिला को पुरुष बनकर काम करने पर स्वीकार लेता है, तो उसके स्त्री बनी रहकर काम करने पर उसे क्या शिकायत हो जाती है? न केवल मिस्र, बल्कि पूरी दुनिया के पुरुष समाज को इस सवाल का जवाब खोजना होगा।

उत्तर: भारत में सय्यद मुबीन जेहरा जैसी आठ-दस महिलाओं को मैं जानता हूँ जो ऐसी लेखिका हैं, जिन्हें हर लेख में प्रायः आधुनिक महिलाओं की समस्याओं की ही याद आती है, न कि देश में फैली अन्य सैंकड़ों समस्याओं की। ऐसा लगता है जैसे उन्होंने एकमात्र महिला समस्या पर लिखने का ठेका उठा लिया हो।

मिस्र में एक महिला ने पुरुष के भेष में 33 वर्ष बिता दिए, तो मुझे समझ में नहीं आया कि इसमें ऐसी कौन सी विशेषता है। किरण वेदी जैसी हजारों महिलाएँ पुरुष भेष में रहती हैं और स्वयं को महिला कहती हैं। यदि उसने अपने भेष को पुरुष कह दिया या अपना नाम पुरुष रख लिया, तो क्या हो गया। मुझे यह भी मालूम है कि हजारों पुरुष महिलाओं के भेष में रहकर रोजी-रोटी कमाते हैं। एक आई.पी.एस. पुलिस अधिकारी सरकारी ड्यूटी पर रहते हुए भी पुरुष भेष छोड़कर महिला की पोशाक में रहते थे।

मैं नहीं समझता कि मुबीन जेहरा को इस बात में कौन सी विशेषता दिखी। लेखिका स्वयं महिला भेष, महिला नाम के आधार पर इतना जीवन आराम से बिता चुकी है। पता नहीं कि इस संबंध में उनका व्यक्तिगत अनुभव क्या है। वे लिख रही हैं कि महिला के सजने-संवरने का समय छूट गया। मैं नहीं समझता कि यह लिखकर वे कितना महिलाओं के खिलाफ लिख रही हैं। मेरे विचार से पुरुष समाज में कोई स्त्री अकेली, अलग तरह से रहना चाहे, तो यह उसकी स्वतंत्रता है। यदि वह महिला पुरुष के भेष में रहकर अपना महिला नाम भी रखती है, तब भी कोई विलक्षण बात नहीं होती। आधुनिक महिलाओं को इस तरह बात का बतंगड़ बनाने की प्रवृत्ति छोड़ देनी चाहिए। हमारे जिले में हजारों महिलाएँ ईंट-भट्ठों पर काम करती हैं या वे सभी काम करती हैं जो मिस्र की उस महिला ने किए हैं, और ऐसी महिलाओं में से अनेक अपनी इच्छा के विरुद्ध पुरुष आक्रमण से सुरक्षित रही हैं। मैं महिलाओं के पक्ष में ऐसी थोथी दलीलों के विरुद्ध हूँ।

उदयकरण सुमन, गंगानगर, राजस्थान. ज्ञानतत्व अगस्त 2015

26 . **प्रश्न**: - ज्ञानतत्व 312 में आपने महिलाओं पर चर्चा करते समय यह लिखा कि यदि महिलाओं की संख्या कन्याभ्रूण हत्या के प्रभाव से कुछ और भी कम हो जाए तो यह समस्या का विस्तार न होकर बल्कि समाधान ही होगा। आपके इस कथन से मुझे गंभीर निराशा हुई है। यदि कोई अन्य व्यक्ति ऐसी बात कहा होता तो मैं उसे टाल भी देता, किन्तु आप जैसे गंभीर विचारक ने यह कहा तो न तो इसे टालना संभव है और न ही स्वीकार करना और इसलिए मैं समझता हूँ कि इस पर आगे और विचारों का आदन-प्रदान होना चाहिए।

मुझे लगता है कि आपकी सोच वास्तविकता से परे है, निराधार है, असंगत है, और अमानवीय भी। आज विश्व स्तर पर नर हत्याओं तक को दी जाने वाली फॉसी का मानवीय आधार पर विरोध हो रहा है। दूसरी ओर एक निरपराध, अवष, मासूम जिसने अभी जन्म भी नहीं लिया है, उसको जीने के अधिकार से वंचित कर देना कितना उचित है?

आज केंद्रीय सरकार, राज्य सरकारें तथा देश का संपूर्ण बौद्धिक जनमानस "बेटी बचाओ" में सक्रिय है, प्रधानमंत्री से लेकर सारे धर्मगुरु तक गंभीर प्रयास कर रहे हैं। इतने प्रयासों के बाद भी यदि महिलाओं का प्रतिशत घट रहा है, तो इस प्रयास को छोड़ देने का कितना दुष्परिणाम होगा, यह गंभीरता आपने नहीं सोची।

वर्तमान समय में देश भर के समाचार पत्र "वधु चाहिए" के विज्ञापनों से भरे पड़े हैं। शातिर लोगों ने मैरेज ब्यूरो के बोर्ड लगाकर "शादी दफ्तर" के नाम पर लूट मचा रखी है। तीस-तीस, पैंतीस-पैंतीस वर्ष के लड़के कुंवारे घूम रहे हैं, यहाँ-वहाँ घूमकर चरित्रपतन कर रहे हैं। बलात्कारों तथा सामूहिक बलात्कारों की बाढ़ आ गई है। ऐसी विकट स्थिति में आपका कथन आग में घी डालने के समान है।

नर-नारी एक दूसरे के पूरक होते हैं। एक आयु के बाद हर व्यक्ति को अपने से विपरीत लिंग का सानिध्य मिलना ही चाहिए। नहीं मिला तो कामापराध बढ़ेंगे। जो बलात्कार आज अंधेरे में सुनसान जगह पर हो रहे हैं, वे खुलेआम होने लगेंगे। इस पर भी विचार करिए।

आपने विचित्र तर्क दिया है कि महिलाओं की घटती संख्या, जाति, और सम्प्रदाय व्यवस्था को भी कमजोर करेगी। मुझे इस तर्क में कोई यथार्थ नहीं दिखता। सब बातों पर विचार करके ही मैं सोच रहा हूँ कि आपके इस कथन का जोरदार प्रतिवाद किया जाए। मुझे उम्मीद है कि आप विचार मंथन की दृष्टि से अपना कथन प्रस्तुत करेंगे, जिससे कि इस विषय पर विचार मंथन आगे बढ़ सके।

उत्तर: सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि आदर्श समाज व्यवस्था में व्यक्ति, परिवार, गाँव, जिला, प्रदेश, देश और समाज के क्रम में व्यवस्था चलनी चाहिए अथवा व्यक्ति, लिंग, जाति, वर्ण, धर्म, राष्ट्र

और विश्व के आधार पर? मैं व्यक्ति, परिवार, गाँव से समाज तक की व्यवस्था का पक्षधर हूँ तथा लिंग, जाति, धर्म, राष्ट्र की व्यवस्था का विरोधी। महिला और पुरुष को अलग-अलग वर्गों में बाँटकर देखना दूसरी व्यवस्था में शामिल है, जिसे मैं आदर्श नहीं मानता। मैं कन्याभ्रूण हत्या रोकने का विरोधी हूँ, भ्रूण हत्या रोकने का नहीं। यदि व्यवस्था के हिसाब से आवश्यक है तो महिला- पुरुष का भेद न करके समान रूप से बालक- बालिका के लिए नियम बनने चाहिए। मैं भारत को एक सौ चालीस करोड़ व्यक्तियों का देश मानता हूँ। इसमें मैं

लिंग भेद के आधार पर कोई अलग कानून बनाने का पक्षधर नहीं। परिवार, व्यक्ति के बाद व्यवस्था की दूसरी इकाई है। आप विचार कीजिए कि परिवार में क्या महिलाओं को सम्पत्ति में समान अधिकार प्राप्त हैं? क्या महिलाओं को परिवार का मुखिया चुनने में समान भूमिका है? मेरे विचार से आज भी परिवार व्यवस्था में महिलाएँ दूसरे दर्जे की नागरिक हैं।

यदि अब तक का भारत का पुरुष समाज महिलाओं को न परिवार व्यवस्था में समान अधिकार देने का पक्षधर है, न ही कानून के आधार पर, तो ऐसी स्थिति में यदि किसी सामाजिक अव्यवस्था में महिलाओं की संख्या घटने लगे, तो पहली आवश्यकता यह होनी चाहिए कि महिलाओं की घटती संख्या में पुरुष प्रधान मानसिकता का कितना योगदान है और उस गैप को कैसे भरा जा सकता है, न कि उस समाधान की खोज करने के बजाय महिलाओं की संख्या बढ़ाकर उस समस्या का समाधान करने की। मोदी जी और रामदेव जी तथा आप भी पुरुष प्रधान मानसिकता के कारण महिलाओं की घटती संख्या की कल्पना से चिंतित, विचलित हैं। सारा पुरुष समाज तथा पुरुष समाज के अंतर्गत काम कर रही पारिवारिक महिलाएँ इस बात की कल्पना से डर रही हैं कि भविष्य में पत्नी कहाँ से लाएँगे, बहू कहाँ से लाएँगे, हुकूम किस पर चलाएँगे। यह बात इन लोगों में सिहरन पैदा कर देती है कि वर्तमान समय में अमानत के रूप में पाल-पोष कर तैयार की गई लड़कियाँ,

बहू के रूप में घर में आ जाती हैं। कहीं ऐसा न हो जाए कि लड़कियों का अभाव हो जाए और अनेक लड़कों को लड़कियों के घर में घरजमाई बनकर काम करना पड़े। बहुत योग्य लड़कियों से कम योग्य लड़कों को विवाह करके उनके निर्देशों में काम करना पड़े।

मैं इस भयावह कल्पना से चिंतित हूँ और इस कल्पना से ही प्रसन्न होकर सोच रहा हूँ कि कब वह दिन आएगा जब परिवार में तथा कानून में महिला और पुरुष का भेद समाप्त होकर परिवार के प्रत्येक सदस्य को सम्पत्ति तथा परिवार की पारिवारिक व्यवस्था के संचालन में समान भागीदारी प्राप्त हो। मुझे यह स्पष्ट दिखता है कि

यदि महिलाओं की संख्या का अनुपात का अंतर पाँच प्रतिशत हो जाए, तो यह परिवर्तन कल्पना नहीं बल्कि यथार्थ में बदल जाएगा। नर-नारी एक-दूसरे के पूरक नहीं होते, बल्कि परिवार व्यवस्था में दोनों ही सहभागी होते हैं, सहयोगी नहीं। परिवार व्यवस्था में एक-दूसरे को सहयोगी के रूप में देखना भी अच्छा नहीं, जबकि वर्तमान समय में तो नारी को पुरुष की एक पक्षीय सहयोगी मान लिया गया है। इस्लाम में यह व्यवस्था घोषित रूप से है, तो हिंदुओं में अघोषित रूप से। हम क्यों न पहले इस विचार को खंडित करें। यदि इतना कर लिया जाए, तो संभव है कि समाज को महिला और पुरुष के इस अनुपात को प्राकृतिक रूप से सुधारने की आवश्यकता महसूस हो जाए। व्यवस्था को ठीक किए बिना वर्तमान चल रही अव्यवस्था को ही किसी अन्य तरीके से चलाने की कोशिश करना उचित नहीं। आपके पत्र से मुझे महसूस हुआ कि आप महिलाओं की घटती संख्या के कारण पुरुष वर्ग के समक्ष खड़ी समस्याओं की कल्पना से चिंतित हैं और मैं उस चिंता में ही समाधान देख रहा हूँ। मैं नहीं समझता कि जीवित महिलाओं को विकृत व्यवस्था में समान अधिकार से वंचित रखना मानवता है और अजन्मी कन्याओं की भ्रूण हत्या मानवता के विरुद्ध। कृपया मानवता की परिभाषा भावनाओं के आधार पर तय न करके विचारों के आधार पर करने की कृपा करें।

27. **बेचू बी.ए., कुशीनगर, उ.प्र.**

प्रश्न: हिंदू धर्म में कहा गया है कि जहाँ नारी की पूजा होती है, वहाँ देवता वास करते हैं। घर की लक्ष्मी नारी है। नारी के बिना घर भूत का डेरा है। नारी न हो तो पूरी सृष्टि थम जाएगी। जहाँ नारी की यह महत्ता है, वहाँ आदिकाल से देखा जाए तो हर युग में नारियों की पूजा होती रही। आदि शक्ति देवी दुर्गा, सीता, गायत्री, अनुसुईया आदि तमाम देवियों की बात करें तो नारी की यशकृति इस संसार से छिपी नहीं है। लेकिन आज तमाम रूढ़िवादिताएँ, आडम्बर, अंधविश्वास के मकड़जाल में नारियों की जहाँ बेतहासा दुर्दशा हुई है, वहाँ मंदिरों में उनके प्रवेश को लेकर हल्ला मचा है।

अब जब महिला जागरूक हुई है, तो न्यायालय आगे आकर इस अन्याय के विरुद्ध नारियों के हक में फैसला सुनाने को विवश है, लेकिन अब भी दकियानूसी लोग मुंह बिचका रहे हैं।

बात चाहे केरल के सबरीमाला मंदिर की करें या महाराष्ट्र के शनि शिंगणापुर शनि मंदिर या कोल्हापुर के प्रसिद्ध महालक्ष्मी मंदिर के गर्भगृह की। इन मंदिरों में नारियों का प्रवेश वर्जित है, लेकिन सुप्रीम कोर्ट जहाँ केरल के सबरीमाला मंदिर में महिलाओं के प्रवेश कर पूजा पाठ करने की याचिका पर विचार कर रहा है, वही महाराष्ट्र देवस्थान समिति, श्री पूजक समिति और त्र्यंबकेश्वर, देवस्थान ट्रस्ट भी महिलाओं के प्रति उदारता दिखाने के प्रयास में हैं।

सबरीमाला मंदिर में रजोधर्म आयुवर्ग की महिलाओं के प्रवेश पर रोक पर सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि हिंदू धर्म पुरुष और महिलाओं में भेद नहीं करता। हिंदू हिंदू होता है, चाहे वह महिला हो या पुरुष। ऐसे में पुरुषों को मंदिर में जाने की इजाजत क्यों और महिलाओं

को क्यों नहीं। न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा की अध्यक्षता वाली पीठ ने यहाँ तक कहा कि भगवान शिव बिना शक्ति के एक कदम नहीं चल सकते और उनकी शक्ति पार्वती है, यह महिला शक्ति को दर्शाता है। पीठ ने यह भी कहा कि हम इस बात पर नहीं जाना चाहते कि सबरीमाला मंदिर में भगवान को ब्रह्मचारी रूप में पूजा जाता है और वह नहीं चाहते कि 10 से 50 आयु वर्ग की महिलाएँ उनके पास आएँ। लेकिन हमें यह देखना होगा कि यह संविधान की कसौटी पर कितना खरा उतरता है।

लेकिन कहीं देश के जगतगुरु शंकराचार्य, स्वामी स्वरुपानंद सरस्वती ने कहा कि शनि की पूजा करने से महिलाओं का हित नहीं होगा बल्कि अत्याचार, दुराचार बढ़ेंगे। आप इस तर्क को कहाँ तक जायज ठहराएंगे?

जब सती प्रथा, बालविवाह, जमीदारी और छुआछूत आदि समाप्त हो सकते हैं, तो यह क्यों नहीं? मैं आपसे यह प्रश्न करना चाहता हूँ कि क्या भारत में नारियों के प्रति इसी तरह के प्रतिबंध लगते रहेंगे। जुल्म व धर्म के बंधनों में सिर्फ नारी ही बंधती रहेंगी। इस मुद्दे पर क्या न्यायालय का हस्तक्षेप जरूरी है?

उत्तर: आपने जो विचार व्यक्त किए हैं, उन सबका उत्तर ज्ञानतत्व 312 पृष्ठ 11 से 26 तक विस्तृत रूप से दिया गया है। आपको यह ज्ञानतत्व भी भेजा गया है और यदि आपने उस उत्तर को पढ़ने के बाद कुछ लिखा होता तो अधिक अच्छा होता। फिर भी मैं संक्षेप में कुछ लिख रहा हूँ।

यह विचार करना होगा कि परिवार एक प्राकृतिक इकाई है अथवा संगठन? परिवार स्वनिर्मित इकाई है अथवा सहमति से बनता है। महिला और पुरुष अलग-अलग संगठन हैं अथवा परिवार रूपी एक संगठन के संयुक्त सदस्य। मेरे विचार में परिवार एक संगठन है, संगठन के संयुक्त सदस्य मेरे विचार में परिवार एक संगठन है, सहमति से बनता है तथा परिवार का प्रत्येक सदस्य परिवार रूपी संगठन का एक संयुक्त सदस्य है, पृथक सदस्य नहीं। परिवार में शामिल होने के बाद व्यक्ति का सम्पूर्ण विलय हो जाता है और यह विलय तब तक रहता है जब तक व्यक्ति और परिवार के बीच आपसी सहमति है। यदि कोई व्यक्ति, चाहे वह महिला हो या पुरुष, यदि परिवार का सदस्य है, तो उसे परिवार की सहमति के बिना किसी अन्य संगठन का सदस्य बनने का अधिकार नहीं है। यदि उसे बिना सहमति के ऐसा करने की स्वतंत्रता चाहिए, तो वह परिवार छोड़ सकता है, किन्तु परिवार में रहते हुए अनुशासन नहीं तोड़ सकता। महिला सशक्तिकरण की बीमारी तब शुरू हुई है जब महिला और पुरुष को परिवार की संयुक्त इकाई का सदस्य न मानकर अलग-अलग देखा गया। "यत्र नार्यस्तु पूज्यंते" यदि कभी लिखा गया तो ढोल-गवार, शूद्र, पशु नारी भी तो लिखा गया। यदि दुर्गा, सीता, सावित्री की कभी पूजा हुई तो कभी सुरपनखा, कैकई, मंथरा को गालियाँ भी दी गईं। पूजा विचार की होती है, चरित्र की होती है, कर्म की होती है, जन्म लेने मात्र से कोई किसी व्यवहार का अधिकारी नहीं हो जाता। न सभी महिलाओं का आचरण एक समान है, न सभी पुरुषों का। इसलिए मेरा विचार है कि व्यक्तियों को गुण-दोष के आधार पर अच्छा-बुरा समझने की आदत डालिए, न कि समाज तोड़कर महिला सशक्तिकरण जैसे नारों में उलझना उचित है।

मंदिर-मस्जिद में महिलाओं का प्रवेश उचित है या नहीं, इसका निर्णय कौन करेगा? मेरे विचार में इसका निर्णय उस मंदिर-मस्जिद की प्रबंधकारिणी समिति पर छोड़ देना चाहिए। यदि कोई प्रबंधकारिणी समिति गलत करती है, तो उसे बदलने की व्यवस्था होनी चाहिए और यदि वह भी संभव न हो, तो आप पृथक से कोई ऐसा धर्मस्थान बना सकते हैं, जो आपके द्वारा बनाए गए नियमों के आधार पर संचालित हो।

सबरीमाला मंदिर में महिलाएँ प्रवेश करें या नहीं, इसका निर्णय मंदिर के 50 या 100 किलोमीटर के अंतर्गत आने वाले हिंदू महिला-पुरुष मतदान द्वारा कर सकते हैं। ऐसे निर्णय में सरकार, न्यायालय अथवा बाहर के लोगों का हस्तक्षेप क्यों होना चाहिए?

हिंदू धर्म पुरुष या नारी में भेद नहीं करता, यह बात सही है, किन्तु इसका निर्णय हिंदू पुरुष, हिंदू महिलाएँ मिलकर या हिंदू परिवार बैठकर करेंगे या कोर्ट? किसी न्यायाधीश ने यदि कह दिया कि भगवान शिव हमेशा शक्ति के साथ चलते रहे हैं, तो क्या हम मान लें कि न्यायालय शिव और पार्वती के अस्तित्व को स्वीकार करता है?

मेरे विचार से आपने जो प्रश्न किया है, वह स्वयं में समाज तोड़क विचारों के प्रचार से प्रभावित होकर लगता है। मैं फिर से स्पष्ट कर दूँ कि महिलाओं और पुरुषों को संविधान ने व्यक्ति के रूप में समान अधिकार दिए हैं। किन्तु आपसी सहमति से किसी संगठन का सदस्य बनते ही उनके अधिकार तब तक असमान हो सकते हैं जब तक उनमें सहमति है।

जब उन्हें व्यक्ति के रूप में समान संवैधानिक अधिकार प्राप्त हैं, तो यह कैसे संभव है कि किसी भी व्यक्ति को महिला होने के आधार पर विशेष अधिकार देना संविधान-विरुद्ध नहीं है। भारतीय संविधान को संवैधानिक मामलों तक ही व्याख्या करने या हस्तक्षेप करने का अधिकार होना चाहिए और न्यायपालिका को भी व्यक्ति के मूल अधिकार या संवैधानिक अधिकार तक ही हस्तक्षेप करना चाहिए। न्यायालय कोई सर्वशक्तिमान इकाई नहीं है, जो व्यक्ति के धार्मिक, सामाजिक या स्वैच्छिक अधिकारों की भी व्याख्या कर सके।

सृष्टि के सुचारु संचालन के लिए महिला और पुरुष के बीच आपसी सहमति अनिवार्य है। यदि किसी परिवार या अधिकांश परिवारों में महिला के साथ अत्याचार होता है, तो ऐसी परिस्थिति में अत्याचार करने वाले को समझाना एक मार्ग है, और यदि फिर भी संभव न हो, तो दोनों को अलग-अलग होने की छूट हो सकती है। किन्तु किसी भी परिस्थिति में परिवार में रहते हुए महिला को भड़काना पूरी तरह समाज-विरोधी कार्य है।

ऐसी महिलाओं को, जो अन्य परिवारों की महिलाओं को भड़काने का काम करती हैं, उन्हें न्यायालय से दंडित किए जाने की व्यवस्था होनी चाहिए। यदि पुरुष भी ऐसा करें, तो उनके लिए भी दंड की व्यवस्था हो। पति-पत्नी के बीच संदेह की दीवार खड़ा होना बहुत अधिक घातक होगा। यह विषय संवेदनशील है तथा इस विषय पर राजनीति करना बहुत नुकसान करेगा।

मैं पुनः चाहूँगा कि आप ज्ञानतत्व 312 पढ़कर ही फिर से प्रश्न करें।

अर्धनारीश्वर से अर्धसत्य तक

स्त्री पुरुष सम्बन्ध का बौद्धिक पुनर्पाठ

: ज्ञानेन्द्र आर्य
सहसंपादक

स्त्री-पुरुष संबंध को इतिहास, जीवविज्ञान, विचारधारा और दर्शन की कसौटी पर परखते हुए यह लेख-श्रृंखला संघर्ष नहीं पूरकता का मार्ग खोजती है। यह लेख विश्लेषण, प्रश्न और समाधान का मार्गदर्शन प्रस्तुत करता है।

खंड — १
स्त्री-पुरुष असंतुलन की समस्या : एक तटस्थ और गहन विश्लेषण

प्रस्तावना

किसी समस्या का समाधान खोजने से पहले उसे ईमानदारी से समझना आवश्यक है। स्त्री के साथ ऐतिहासिक अन्याय एक सत्य है - किंतु उस अन्याय की जड़ें कहां हैं, यह समझे बिना न तो उसका उचित मूल्यांकन संभव है और न ही स्थायी समाधान।

स्त्री को दोयम दर्जा दिए जाने का इतिहास किसी एक समाज, धर्म या संस्कृति की विशेषता नहीं है। यह एक सार्वभौमिक परिघटना है जो विश्व की लगभग सभी सभ्यताओं में कमोबेश एक जैसी दिखती है - यूरोप में भी, एशिया में भी, अफ्रीका में भी, अमेरिका की मूल सभ्यताओं में भी। यह सार्वभौमिकता स्वयं एक महत्वपूर्ण सुराग है।

यदि यह केवल किसी एक धर्म या सत्ता का षड्यंत्र होता - तो सभी सभ्यताओं में एक साथ यह प्रवृत्ति क्यों होती? इसका उत्तर षड्यंत्र में नहीं - उन मनोवैज्ञानिक, जैविक, आर्थिक, सामाजिक और भौगोलिक परिस्थितियों में है जिन्होंने मानव समाज को आकार दिया।

इस विमर्श का उद्देश्य उस व्यवस्था को न्यायोचित ठहराना नहीं - बल्कि उसे समझना है।

जैविक और मनोवैज्ञानिक आधार

प्रकृति ने स्त्री और पुरुष को शारीरिक और मानसिक दोनों स्तरों पर भिन्न बनाया है। यह भिन्नता श्रेष्ठता या हीनता का आधार नहीं पूरकता का सूत्र है।

पुरुष में शारीरिक शक्ति, स्थानिक तर्क और लक्ष्य-केंद्रित एकाग्रता अपेक्षाकृत अधिक होती है। स्त्री में भावनात्मक बुद्धि, सामाजिक संवेदनशीलता और बहु-कार्य क्षमता अधिक विकसित होती है। ये अंतर केवल सांस्कृतिक नहीं - न्यूरोविज्ञान और विकासवादी जीवविज्ञान दोनों इनकी पुष्टि करते हैं।

यहां एक महत्वपूर्ण सूक्ष्मता है। स्त्री की भावना-प्रधानता को दुर्बलता नहीं कहा जा सकता। वास्तव में यह स्व से प्रारंभ होकर निकट संबंधों तक विस्तारित एक गहरी संवेदनशीलता है - जो परिवार और समाज की ऊष्मा का आधार है। वह पहले स्वयं को अनुभव करती है, फिर उस अनुभव के माध्यम से दूसरों को समझती है।

पुरुष इससे भिन्न है - वह पहले व्यवस्था और लक्ष्य देखता है। इस भिन्नता का एक व्यावहारिक निहितार्थ है। भावना का अनुपात अधिक होने के कारण स्त्री में तत्काल भावनात्मक प्रतिक्रिया कभी-कभी दीर्घकालिक तर्कसंगत सोच पर हावी हो सकती है। किंतु उसी भावना-प्रधानता के कारण वह संबंधों को जोड़ने और परिवार को एकसूत्र में बांधने की अद्वितीय क्षमता रखती है।

और यहां पुरुष की एक सूक्ष्म कमजोरी भी है। तर्क की प्रधानता के कारण पुरुष भावना को साधन के रूप में उपयोग कर सकता है - अर्थात स्त्री भावना में बह सकती है, पुरुष भावना का उपयोग कर सकता है। यह असंतुलन ऐतिहासिक रूप से स्त्री के शोषण का एक मनोवैज्ञानिक आधार बना।

ऐतिहासिक परिस्थितियों का तर्क : परिस्थितिजन्य विभाजन

स्त्री को दोयम दर्जा क्यों मिला इसे समझने के लिए उस काल की परिस्थितियों में जाना होगा।

प्रजनन की क्षमता केवल स्त्री में होने के कारण समूह की जनसंख्या और निरंतरता उस पर निर्भर थी। किसी भी युद्ध या महामारी के बाद समाज की पुनर्स्थापना के लिए स्त्री की रक्षा अनिवार्य थी। पितृत्व की अनिश्चितता - जो DNA परीक्षण के बिना अनिर्धारित थी - ने संपत्ति, उत्तराधिकार और वंश की व्यवस्था को स्त्री की यौन स्वतंत्रता से जोड़ दिया। कृषि और पशुपालन-आधारित समाज में शारीरिक श्रम और भूमि-स्वामित्व निर्णायक थे, और युद्ध में शारीरिक शक्ति जीवन-मृत्यु का प्रश्न थी।

भौगोलिक परिस्थितियों ने भी इस विभाजन को सुदृढ़ किया। हिमालय की कठोर घाटियों में, मध्य एशिया के मैदानों में, अरब के मरुस्थलों में - जहां बाह्य आक्रमण निरंतर खतरा थे. स्त्री का घर में रहना सुरक्षा की अनिवार्यता थी, न दासता। सुरक्षित घर से बाहर निकलना मृत्यु का निमंत्रण था।

इन परिस्थितियों में बाह्य व्यवस्था स्वाभाविक रूप से पुरुष के हाथ में आई और आंतरिक व्यवस्था स्त्री के। यह विभाजन परिस्थितिजन्य था - जैविक श्रेष्ठता का प्रमाण नहीं।

जहां व्यवस्था न्यायसंगत नहीं रही

धार्मिक और सामाजिक व्यवस्थाओं ने इन परिस्थितिजन्य भूमिकाओं को दैवीय आदेश का रूप दे दिया। इससे व्यवस्था को

स्थायित्व मिला - किंतु एक बड़ी चूक हुई। भूमिका और गरिमा के बीच का अंतर धुंधला हो गया। भूमिका-भिन्नता धीरे-धीरे हीनता में रूपांतरित होती गई।

जब परिस्थितियां बदल गईं - जब युद्ध की अनिवार्यता कम हुई, जब संपत्ति के नए स्वरूप आए, जब शिक्षा सुलभ हुई - तब भूमिकाओं को भी बदलना चाहिए था। किंतु व्यवस्था ने जड़ता पकड़ ली। यही वह बिंदु है जहां ऐतिहासिक व्यवस्था न्यायसंगत नहीं रही और जहां से असंतुलन को सुधारने की वास्तविक आवश्यकता थी।

धार्मिक परंपराओं में अंतर : छद्म निष्पक्षता से परे

इस संदर्भ में एक महत्वपूर्ण तथ्य की अनदेखी नहीं की जा सकती। हिंदू समाज में कोई केंद्रीकृत धर्मसत्ता नहीं है जो व्यक्तिगत स्वतंत्रता को बलपूर्वक बाधित करे। यहां ग्रंथ विविध हैं, व्याख्याएं अनेक हैं और धर्मगुरु आग्रह करते हैं - आदेश नहीं देते। देवी की उपासना, शक्ति का आराधना और अर्धनारीश्वर का दर्शन - ये सब यहां की परंपरा के अभिन्न अंग हैं।

इस्लाम में कुरान और हदीस की कुछ व्याख्याएं स्पष्ट रूप से और बाध्यकारी रूप से महिलाओं की स्वतंत्रता सीमित करती हैं - जो ईरान और अफगानिस्तान जैसे देशों में राजकीय दंड के साथ आज भी लागू होती हैं। यहां धर्म और राज्य एकाकार हैं और असहमति का मूल्य जेल या मृत्यु है।

यह अंतर मौलिक है। इसे छद्म निष्पक्षता के नाम पर समान नहीं कहा जा सकता और ऐसा कहना स्वयं एक बौद्धिक अनैमानिकता है।

खंड — २

विचारधाराओं की समीक्षा : मार्क्सवाद, वर्ग-संघर्ष और समाज-विध्वंस की रणनीति

मार्क्सवाद की मूल संरचना और उसकी सीमाएं

कार्ल मार्क्स ने उन्नीसवीं शताब्दी में औद्योगिक पूंजीवाद के संदर्भ में वर्ग-संघर्ष का सिद्धांत दिया। उनकी दृष्टि में इतिहास वर्गों के संघर्ष की कथा है - शोषक और शोषित के बीच। यह विश्लेषण अपने काल में कुछ सीमा तक तथ्यात्मक था। औद्योगिक मजदूरों की दुर्दशा वास्तविक थी और उस पर ध्यान आकर्षित करना आवश्यक था।

किंतु मार्क्सवाद की मूलभूत सैद्धांतिक समस्या यह है कि वह मानव-जीवन की समस्त जटिलता को एक ही ढांचे में शोषक और शोषित के द्वंद्व में समेट लेता है। इस ढांचे में प्रेम, स्नेह, पारिवारिक बंधन, सांस्कृतिक निरंतरता और आध्यात्मिक चेतना के लिए कोई स्थान नहीं।

और सबसे बड़ी समस्या यह है कि इस विचारधारा का कोई भी व्यावहारिक प्रयोग सोवियत रूस, माओ का चीन, कंबोडिया, क्यूबा, उत्तर कोरिया... मानव स्वतंत्रता के दमन, सामूहिक हत्याओं और सांस्कृतिक विनाश में परिणत हुआ। सिद्धांत और परिणाम के बीच इतनी बड़ी और निरंतर खाई किसी भी विचारधारा की मूलभूत विकृति का प्रमाण है।

नव-मार्क्सवाद और सांस्कृतिक मार्क्सवाद : वर्ग-संघर्ष का विस्तार

जब आर्थिक वर्ग-संघर्ष की भविष्यवाणियां गलत साबित हुईं - जब पश्चिम के मजदूरों ने क्रांति नहीं की - तो मार्क्सवादी चिंतकों के फ्रैंकफर्ट स्कूल ने एक नई रणनीति अपनाई। इन्होंने वर्ग-संघर्ष के ढांचे को आर्थिक क्षेत्र से खींचकर संस्कृति, परिवार, लिंग, नस्ल और पहचान के क्षेत्र में स्थापित किया।

अब शोषक केवल पूंजीपति नहीं रहा - पुरुष भी शोषक बन गया, परिवार भी दमन की संस्था बन गई, परंपरा भी वर्चस्व का उपकरण बन गई। और शोषित की भूमिका में स्त्री, अल्पसंख्यक, LGBTQ+ और अन्य 'पहचान समूह' आ गए।

यह वैचारिक विस्तार एक सुविचारित रणनीति थी - समाज की मूल संस्थाओं को एक-एक कर प्रश्नांकित करो, उनकी वैधता को संदिग्ध बनाओ और जब वे कमजोर हों तब राज्य-शक्ति को उनका विकल्प बनाओ।

षड्यंत्र नहीं - प्रणाली : किंतु परिणाम एक ही है

यहां एक स्पष्टीकरण आवश्यक है। जब हम षड्यंत्र की बात करते हैं तो इसका अर्थ यह नहीं कि किसी अंधेरे कमरे में बैठकर कुछ लोग योजना बना रहे हैं। षड्यंत्र प्रायः उतना नाटकीय नहीं होता। वह एक विचारधारा के रूप में, एक शैक्षणिक धारा के रूप में, एक मीडिया-आख्यान के रूप में, एक नीतिगत प्रवृत्ति के रूप में धीरे-धीरे समाज में प्रवेश करता है।

और जब हम देखते हैं कि —

विश्वविद्यालयों में परिवार को पितृसत्तात्मक उत्पीड़न की संस्था पढ़ाया जाता है, मातृत्व को स्त्री की पराधीनता बताया जाता है, विवाह-संस्था को प्रश्नांकित किया जाता है, पुरुष को संस्थागत रूप से संदिग्ध माना जाता है और कानून इस प्रकार बनाए जाते हैं कि एक पक्ष सदा पीड़ित और दूसरा सदा अपराधी हो। तब यह पूछना उचित है कि यह संयोग है या प्रवृत्ति? और यदि प्रवृत्ति है तो उसका लाभार्थी कौन है?

उत्तर स्पष्ट है, वह राज्य-शक्ति जो परिवार के टूटने पर और अधिक शक्तिशाली होती है। परिवार जब टूटता है तो बच्चे राज्य के संस्थानों पर निर्भर होते हैं, वृद्ध राज्य की सुविधाओं पर और व्यक्ति राज्य के कानूनों पर। परिवार का विध्वंस राज्य का विस्तार है।

मानव को यंत्र बनाने का प्रयास

मार्क्सवादी और उसके आधुनिक रूपों की एक और मूलभूत विकृति है। वे मनुष्य को उसकी वर्ग-पहचान, लिंग-पहचान या नस्ल-पहचान तक सीमित कर देते हैं। तुम स्त्री हो - इसलिए शोषित हो। तुम पुरुष हो - इसलिए शोषक हो। तुम ब्राह्मण हो - इसलिए दोषी हो। तुम दलित हो - इसलिए पीड़ित हो।

इस ढांचे में व्यक्ति की स्वतंत्र चेतना, उसके निर्णय, उसके प्रेम, उसके त्याग और उसकी आत्मा के लिए कोई स्थान नहीं। वह केवल एक वर्ग-प्रतिनिधि है - यंत्र है, मनुष्य नहीं।

भारतीय दर्शन इस बिंदु पर मार्क्सवाद से मूलतः और गहराई से भिन्न खड़ा है। यहां व्यक्ति वर्ग की इकाई नहीं - एक अद्वितीय आत्मा है। यहां मुक्ति वर्ग-संघर्ष से नहीं - धर्म, कर्म और पूरकता से आती है। यहां समाधान टूटने में नहीं - जुड़ने में है।

विशेषाधिकार की राजनीति और उसकी विकृति

शासन सत्ता द्वारा महिलाओं को विशेष संरक्षण देना एक सीमा तक न केवल उचित बल्कि आवश्यक था - वह सीमा जहां ऐतिहासिक असंतुलन को सुधारने का प्रयास था, जहां कमजोर को सहारा देना न्याय था।

किंतु जब यह संरक्षण उस सीमा को पार कर गया जहां -आरोप मात्र दंड का आधार बन जाए और प्रमाण की आवश्यकता न रहे, अपराध और अनैतिकता के बीच की विधिक रेखा मिटने लगे, कानून एक पक्ष के लिए सुरक्षा-कवच और दूसरे के लिए दंड का यंत्र बन जाए -

तब वह न्याय नहीं, प्रतिशोध है। और प्रतिशोध कभी स्थायी न्याय की नींव नहीं बन सकता।

यहां एक मनोवैज्ञानिक सत्य भी है। जिसने लंबे समय तक दमन सहा हो - उसे जब अचानक असीमित अधिकार मिलें - तो उसमें बदले की प्रवृत्ति स्वाभाविक है। यह उसका दोष नहीं - यह उस प्रक्रिया का दोष है जो न्याय को झटके से थोपती है, क्रमशः नहीं देती।

खंड — ३

समानता, पूरकता का दर्शन और स्वस्थ भविष्य का निर्माण

क्रमशः समानता : जो होना चाहिए था

ऐतिहासिक असंतुलन को सुधारना था इस पर कोई विवाद नहीं। प्रश्न यह है कि वह सुधार किस प्रकार होना चाहिए था।

इतिहास इस प्रश्न का उत्तर स्वयं देता है।

ब्रिटेन में मताधिकार आंदोलन लगभग सत्तर वर्षों में क्रमशः आगे बढ़ा। पहले संपत्तिधारी महिलाओं को, फिर सभी महिलाओं को मताधिकार मिला। यह क्रमिकता इसलिए सफल रही क्योंकि समाज को अनुकूलन का समय मिला।

जापान में मेजी पुनर्स्थापना में भी पश्चिमी शिक्षा और स्त्री-शिक्षा को क्रमशः समाज में स्थापित किया गया - बलपूर्वक नहीं थोपा गया। परिणाम यह हुआ कि परिवार टूटे बिना स्त्री की स्थिति सुदृढ़ हुई।

इसके विपरीत सोवियत रूस में बोल्शेविक क्रांति के बाद स्त्री-मुक्ति को रातोंरात घोषित किया गया। परिवार की संस्था को बुर्जुआ बताया गया। परिणाम? परिवार टूटे, बच्चे अनाथ हुए, स्त्रियों पर दोहरा बोझ पड़ा - घर भी, कारखाना भी। वह मुक्ति नहीं, एक नई दासता थी।

ईरान में १९७९ की इस्लामी क्रांति - का उदाहरण विपरीत दिशा में है। वहां शाह के काल में महिलाओं को शीघ्रता से पश्चिमी मॉडल पर अधिकार दिए गए - समाज की तैयारी के बिना। क्रांति ने उसकी प्रतिक्रिया में महिलाओं पर कठोरतम प्रतिबंध लगा दिए। शीघ्रता से थोपी गई समानता ने प्रतिक्रियावादी दमन को जन्म दिया।

भारत का अनुभव - इस दृष्टि से सबसे जटिल है। संविधान ने एक झटके में स्त्री को समानता दी - यह एक साहसी और आवश्यक कदम था। किंतु शिक्षा और सामाजिक जागरूकता उसके समानांतर नहीं चली। परिणाम यह हुआ कि कागज पर समानता है, व्यवहार में असमानता है - और इस खाई का लाभ दोनों ओर के अतिवादी उठाते हैं।

इन सभी उदाहरणों से एक सूत्र निकलता है - शिक्षा पहले, जागरूकता उसके बाद, अवसर उसके बाद और कानूनी संरक्षण उसके साथ - किंतु प्रत्येक चरण पिछले चरण की पूर्णता के बाद। यह क्रमशः समानता का सिद्धांत है।

पूरकता का दर्शन : बजरंग मुनि जी का परिपक्व दृष्टिकोण

इस पूरे विमर्श में बजरंग मुनि जी का दृष्टिकोण एक महत्वपूर्ण और परिपक्व आयाम जोड़ता है। वे स्त्री-पुरुष संबंध को वर्ग-संघर्ष या प्रतिस्पर्धा के रूप में नहीं देखते। उनके अनुसार विवाह दो इकाइयों का विलीनीकरण है - जहां दोनों मिलकर परिवार रूपी एक नई स्वतंत्र इकाई का निर्माण करते हैं।

उनका सहभागिता का विचार सहयोग से गहरा है। सहयोगी दो अलग इकाइयां होती हैं जो एक-दूसरे की मदद करती हैं और आवश्यकता पूरी होने पर पृथक हो जाती हैं। सहभागी वे होते हैं जो मिलकर एक नई इकाई बन जाते हैं - जिनका पृथक्करण स्वयं एक क्षति है।

आंतरिक व्यवस्था में स्त्री प्रधान और बाह्य व्यवस्था में पुरुष प्रधान यह भूमिका- निर्धारण एक दूसरे के क्षेत्र में अतिक्रमण से सुरक्षा करता है। भूमिका की सीमा बंधन नहीं - संरक्षण है, स्पष्टता है और सम्मान है।

मुनि जी महिला सशक्तिकरण या पुरुष सशक्तिकरण के पृथक नारों के स्थान पर परिवार सशक्तिकरण की बात करते हैं। यह इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि पृथक सशक्तिकरण वर्ग निर्मित करता है, वर्ग संघर्ष को जन्म देता है और संघर्ष परिवार और समाज दोनों को तोड़ता है।

वर्तमान वैश्विक शासन-नीतियों पर वैचारिक प्रभाव

आज विश्व की अनेक लोकतांत्रिक सरकारें अपनी नीतियों के निर्माण में उन वैचारिक धाराओं से प्रभावित हैं जो मूलतः नव-मार्क्सवादी या उत्तर-आधुनिकतावादी पृष्ठभूमि से आती हैं। लैंगिक कोटा, पहचान-आधारित सकारात्मक भेदभाव, gender ideology का पाठ्यक्रम में समावेश - ये सब अपने मूल उद्देश्य से भटककर एक कठोर वैचारिक थोपन बन गए हैं।

यहां एक विचारणीय विरोधाभास है। जो विचारधारा व्यक्ति की मुक्ति का दावा करती है - वही उसे एक नए वैचारिक बंधन में जकड़ देती है। पहले धर्मसत्ता ने भूमिकाएं तय कीं, अब विचारधारा-सत्ता तय करती है। केवल कर्ता बदला है - नियंत्रण की प्रवृत्ति वही है।

और जब शासन-तंत्र इस विचारधारा का यंत्र बन जाता है - तब नागरिक न अपने स्वाभाविक सामाजिक ढांचे में जी सकता है और न असहमति व्यक्त कर सकता है बिना किसी लेबल के - पितृसत्तावादी, प्रतिगामी, असहिष्णु।

उपसंहार : अर्धनारीश्वर का दर्शन

भारतीय दर्शन का अर्धनारीश्वर का प्रतीक इस पूरे विमर्श का सार है - दोनों मिलकर एक संपूर्ण हैं। न शक्ति के बिना शिव पूर्ण हैं, न शिव के बिना शक्ति।

आज आवश्यकता न पूर्णतः पारंपरिक व्यवस्था की वापसी की है और न आधुनिक समानता के उस अतिवादी स्वरूप की जो जैविक और मनोवैज्ञानिक वास्तविकताओं को नकारता है।

आवश्यकता उस संतुलन की है - जहां भूमिकाओं की पूरकता को गरिमा की समानता के साथ स्वीकार किया जाए। जहां परिवार सशक्तिकरण केंद्र में हो न पृथक वर्ग-सशक्तिकरण। जहां कानून न्याय का यंत्र हो प्रतिशोध का नहीं।

संस्थागत समाचार

लोक स्वराज यात्रा

संवाद, सहयोग और ज्ञान केंद्र स्थापना की दिशा में निरंतर प्रयास

मा संस्थान के तत्वावधान में चल रहे **लोक स्वराज यात्रा** ने विभिन्न क्षेत्रों में संवाद और विचार-विमर्श के माध्यम से समाज के बीच कार्य किया। इस यात्रा का **उद्देश्य ज्ञान केंद्रों की स्थापना**, वैचारिक शून्यता को कम करना तथा संवैधानिक, सामाजिक और वैचारिक विषयों पर समाज की सहभागिता को बढ़ाना रहा।

यात्रा छत्तीसगढ़ के दुर्ग, भिलाई, राजनांदगांव, बालोद, धमतरी, भानुप्रतापपुर और कांकेर जैसे क्षेत्रों से होकर आगे बढ़ी। इन स्थानों पर आयोजित बैठकों में स्थानीय नागरिकों और सामाजिक कार्यकर्ताओं के साथ चर्चा हुई। इस क्रम में डोंडकवही (कांकेर) तथा पलारी में ज्ञान केंद्रों की स्थापना की गई, जहाँ स्थानीय साथियों ने इसकी जिम्मेदारी स्वीकार की।

इसके बाद यात्रा मध्यप्रदेश के अनूपपुर, उमरिया, कटनी, मैहर और रीवा पहुँची। इन स्थानों पर आयोजित बैठकों में ज्ञान केंद्र स्थापना, संवाद की आवश्यकता और सामाजिक विषयों पर चर्चा हुई। रीवा में आयोजित बैठक में नागरिकों की सहभागिता रही और कई लोगों ने **ज्ञान तत्व पत्रिका की सदस्यता ग्रहण करने** तथा आगे की गतिविधियों में जुड़ने की इच्छा व्यक्त की।

यात्रा के दौरान चर्चा का एक प्रमुख विषय समाज में **वैचारिक शून्यता** और **परिवार सशक्तिकरण की भूमिका** रहा। विभिन्न स्थानों पर यह बात सामने आई कि समाज में संवाद और विचार की प्रक्रिया को नियमित रूप से आगे बढ़ाने की आवश्यकता है।

अब तक स्थापित प्रमुख ज्ञान केंद्रों में:
पेंड्रा गौरेला - सुचंद्र तिवारी, बिलासपुर - नित्यानन्द शर्मा, राजनांद गांव - श्री किशोरी लाट, दुर्ग - जे पी अग्रवाल, पलारी बलोद - रविकांत साहू, भानुप्रतापपुर - वैद्यराज आहूजा, दोड़कावाही (कांकेर)- झाड़ूराम कुंजाम,
कांकेर - दीपक सरवा, उमरिया - अधिवक्ता रामचरित्र मिश्र, कटनी - अरविन्द गुप्ता, रीवा - सुरेश विश्नोई,
मनगवां रीवा - सिद्धार्थ कुमार मिश्र

इसके अतिरिक्त विभिन्न स्थानों पर ज्ञान केंद्र स्थापना की सहमति बनी और स्थानीय स्तर पर इसकी प्रक्रिया प्रारंभ की गई।

इस यात्रा के माध्यम से नए लोगों से संपर्क स्थापित हुआ और पुराने साथियों के साथ संवाद भी सुदृढ़ हुआ। कई स्थानों पर लोगों ने ज्ञान केंद्रों की स्थापना और आगे की गतिविधियों में सहयोग देने की सहमति दी।

आगामी चरण में **अप्रैल माह में रामानुजगंज से लोक स्वराज यात्रा पुनः प्रारंभ होगी**, जो **चंदौसी, सीधी, जबलपुर, इंदौर, भोपाल, उज्जैन, ग्वालियर सहित मध्यप्रदेश के अन्य स्थानों** तक जाएगी। इस चरण में ज्ञान केंद्रों की स्थापना और संवाद को आगे बढ़ाने का कार्य जारी रहेगा। तत्पश्चात

स्त्री-पुरुष संबंध

मर्यादा, समानता और मित्रता का समन्वय

: पवंजय त्रिपाठी
: लखनऊ UP

स्त्री-पुरुष संबंधों का इतिहास मानवीय चेतना के विकास का इतिहास है। विभिन्न धर्मों और कालखंडों ने समय-समय पर इस संबंध को परिभाषित करने के लिए अपने विशिष्ट सूत्र दिए हैं। आज के आधुनिक और जटिल युग में, जहाँ व्यक्तिगत स्वतंत्रता और पारिवारिक स्थिरता के बीच द्वंद्व बना रहता है, इन प्राचीन दर्शनों का मेल ही 'मानव कल्याण' का वास्तविक मार्ग प्रशस्त करता है।

यहाँ सभी प्रमुख दर्शनों के सत्र वाक्य और आधुनिक मानव के लिए उनका विस्तृत विश्लेषण दिया गया है:

प्रमुख दर्शनों के आधारभूत सूत्र वाक्य -

* मनु (मर्यादा): "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।" (जहाँ नारी पूजनीय है, वहाँ सुख-समृद्धि है।)
* वेद (समानता): "अक्षितोऽसि मा मे क्षेष्ठा:।" (हमारा प्रेम अक्षय और कभी कम न होने वाला हो।)
* शिव-शक्ति (पूर्णता): "अर्धनारीश्वर।" (पुरुष और प्रकृति एक-दूसरे के पूरक और अभिन्न हैं।)
* रामायण (निष्ठा): "एक-पत्नी व्रत।" (चरित्र की शुद्धता और अटूट समर्पण का संकल्प।)
* श्रीकृष्ण (मित्रता): "सखा-भाव।" (बौद्धिक साझेदारी, अधिकार और तार्किक संवाद का संबंध।)
* यहूदी (सुरक्षा): "केटुबाह/किदुशिन।" (स्पष्ट आर्थिक और कानूनी उत्तरदायित्व का अनुबंध।)
* इस्लाम (गरिमा): "लिबास।" (एक-दूसरे की कमियों को ढंकने और सुरक्षा देने वाले वस्त्र के समान।)
* ईसाइयत (एकीकरण): "एक ही तन।" (जिसे ईश्वर ने जोड़ा है, उसे मनुष्य अलग न करे।)

आधुनिक मानव के लिए सर्वाधिक उपयुक्त स्त्री-पुरुष संबंध

आज के आधुनिक समाज में, जहाँ तनाव, ईगो और 'डिजिटल अलगाव' बढ़ रहा है, मानव कल्याण के लिए निम्नलिखित सिद्धांतों को अपनाना अनिवार्य है:

1. संतान का अधिकार: 'एकता' की प्राकृतिक शपथ

मानव कल्याण का सबसे बड़ा नियम यह है कि संतान के जन्म के बाद माता-पिता का व्यक्तिगत मतभेद गौण (Secondary) हो जाना चाहिए। , संतान उन दोनों के मिलन का परिणाम है। उसे एक स्वस्थ मानसिक वातावरण (Mental Health) देना माता-पिता का 'ईश्वरीय और प्राकृतिक कर्तव्य' है। जब तक माता-पिता धरा पर हैं, उन्हें अपनी एकता बनाए रखनी चाहिए क्योंकि बच्चों का आत्मविश्वास उनके माता-पिता के आपसी प्रेम और स्थिरता पर टिका होता है।

2. 'अनुबंध' से ऊपर 'संस्कार'

यद्यपि यहूदी और इस्लामिक दर्शनों की तरह आर्थिक स्पष्टता (Financial Clarity) और अधिकारों का ज्ञान होना ज़रूरी है ताकि शोषण न हो, लेकिन रिश्ते को केवल एक 'कागज का टुकड़ा' (Contract) नहीं मानना चाहिए। जब हम रिश्ते को 'ईश्वरीय शपथ' (Sacrament) मानते हैं, तो छोटी-मोटी कड़वाहटों में उसे तोड़ना कठिन हो जाता है। आधुनिक मानव को यह समझना होगा कि 'छोड़ देना' आसान है, लेकिन 'निभाना' ही वास्तविक आत्मिक उन्नति है।

3. 'अर्धनारीश्वर' भाव और सखा-भाव का मेल

आज के दौर में 'जेंडर इक्वालिटी' केवल कानून तक सीमित न रहे। शिव-शक्ति के 'अर्धनारीश्वर' भाव को अपनाकर पुरुष को अपने भीतर की कोमलता और स्त्री को अपनी प्रशासनिक दृढ़ता को स्वीकारना चाहिए। साथ ही, श्रीकृष्ण द्वारा स्थापित 'सखा-भाव' को अपनाना चाहिए, जहाँ पति-पत्नी एक-दूसरे के सबसे अच्छे दोस्त हों। जहाँ दोस्ती होती है, वहाँ अहंकार नहीं होता और संवाद कभी बंद नहीं होता।

4. 'लिबास' और 'मर्यादा' का संतुलन

बाइबिल और कुरान के सिद्धांतों के अनुसार, पति-पत्नी को एक-दूसरे की ढाल (लिबास) होना चाहिए। सार्वजनिक रूप से एक-दूसरे का सम्मान करना और निजी तौर पर एक-दूसरे की कमियों को सुधारना ही रिश्ते की मजबूती है। मनु और राम के 'मर्यादा' और 'चरित्र' के सिद्धांतों को अपनाकर ही समाज में नैतिक पतन को रोका जा सकता है।

5. सामुदायिक और पारिवारिक 'शबात'

आज के 'वर्कहोलिक' युग में यहूदी दर्शन का 'शबात' (अनिवार्य पारिवारिक समय) सबसे अधिक उपयोगी है। हफ्ते में एक दिन मोबाइल, काम और दुनिया से कटकर केवल परिवार और ईश्वर के साथ जुड़ना मानसिक स्वास्थ्य और आपसी जुड़ाव के लिए औषधि की तरह काम करता है।

निष्कर्ष: मानव कल्याण का सूत्र

आधुनिक मानव के लिए स्त्री-पुरुष संबंध का सार यह है: "निष्ठा में राम, समानता में शिव, अधिकार में कृष्ण और सुरक्षा में यहूदी-इस्लामी नियमों का पालन।" जब हम संबंधों को स्वार्थ से ऊपर उठाकर 'परहित' (विशेषकर संतान के कल्याण) के लिए समर्पित करते हैं, तो वह संबंध स्वयं ही एक पूजा बन जाता है। आजीवन साथ रहने की शपथ ही वह 'मानवीय संविधान' है जो विश्व शांति और पारिवारिक समृद्धि की एकमात्र कुंजी है। एकता का यह प्रदर्शन ही मानव कल्याण का सर्वोत्तम और शाश्वत मार्ग है।

मार्गदर्शक प्रकाशन

आदरणीय बजरंग मुनि जी और उनके साथियों द्वारा लिखी गई ये सात पुस्तकें उनके दीर्घ चिंतन, शोध और सामाजिक अनुभव का संक्षिप्त लेकिन प्रभावी संग्रह हैं। इनमें नई शासन व्यवस्था, लोकस्वराज, परिवार और समाज की पुनर्स्थापना, मौलिक व्यवस्था, वैचारिक मंथन, नाटक के माध्यम से जनजागरण और व्यवहारिक जीवन दृष्टि जैसे विषय सरल भाषा में प्रस्तुत किए गए हैं। प्रत्येक पुस्तक वर्तमान व्यवस्था की कमियों को समझने और एक बेहतर विकल्प की दिशा में सोच विकसित करने में मदद करती है। मुनि जी और उनके सहयोगियों ने जटिल मुद्दों को आम पाठकों के लिए सुगम रूप में रखा है, जो इस पूरे सेट को विशेष बनाता है। प्रकाशन विभाग यह सात पुस्तकों का संपूर्ण सेट मात्र 100 रुपये में उपलब्ध करा रहा है, जो हर जागरूक नागरिक के लिए उपयोगी और संग्रहणीय है।

जल्द आ रहा है ...

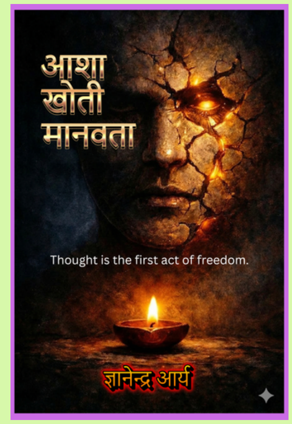

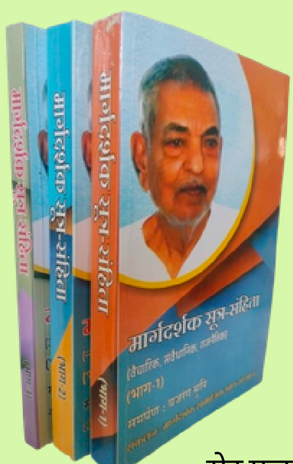

सेट मूल्य ₹100

"मार्गदर्शक सूत्र–संहिता" श्रृंखला के ग्रंथ बजरंग मुनि के सात दशकों के समाज-दर्शन और दार्शनिक शोध से प्राप्त सिद्धांतों का संक्षिप्त रूप हैं। इन दस्तावेज़ों में वैश्विक तथा सामाजिक स्तर पर फैली हुई व्यापक अधोगति का विश्लेषण किया गया है—जहाँ भौतिक प्रगति तीव्र गति से बढ़ रही है, वहीं नैतिक पतन और पारंपरिक परिवार तथा सामुदायिक संरचनाओं का विघटन उसी अनुपात में बढ़ रहा है।

विशेष रूप से भारत को केंद्र में रखते हुए, यह ग्रंथ वर्तमान संविधान की आलोचना करता है क्योंकि संविधान ने राजनेताओं को अनियंत्रित अधिकार प्रदान किए हैं और इसके कारण जनता तथा श्रमिक वर्ग का लगातार शोषण संभव हो पाया है। कई अंशों में गांधी और नेहरू जैसी परस्पर विरोधी राजनीतिक विचारधाराओं पर चर्चा की गई है, साथ ही संघ परिवार जैसी केन्द्रीयकृत संस्थाओं और साम्यवाद तथा समाजवाद की विध्वंसकारी विचारधारा की भी आलोचना की गई है।

इस संपूर्ण विमर्श का मूल समाधान "लोक स्वराज" (जनता का स्व-शासन) को बताया गया है — जिसे राज्यसत्ता के व्यापक विकेन्द्रीकरण और उसके नियंत्रण को स्थानीय समुदायों के हाथों में सौंपकर प्राप्त किया जा सकता है।

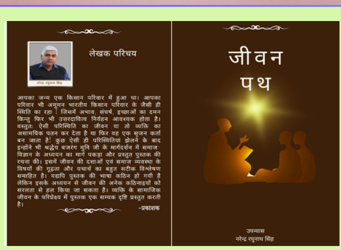

'**जीवन पथ**' नरेंद्र रघुनाथ सिंह के द्वारा लिखित एक यथार्थवादी उपन्यास है। लेखक ने इस पुस्तक के माध्यम से मनुष्य की जीवन यात्रा, उसके संघर्ष और चुनौतियों को सहज एवं सरल भाषा में प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास को पढ़कर पाठक को ऐसा लगता है कि इसकी कहानी उसके जीवन से मेल खाती है। यह पुस्तक पाठकों के लिए पथ प्रदर्शन का कार्य करती है, जिससे वे अपने जीवन को बेहतर बना सकें। प्रस्तुत पुस्तक आत्म विकास और प्रेरणा के लिए अति उपयोगी है। निश्चय ही यह पुस्तक पठनीय एवं संग्रहणीय है। मूल्य ₹50

पुस्तकों के लिए संपर्क सूत्र : 7000475949 ; 9630766001 ; 8318621282

पंजीकृत पाक्षिक

पंजीयन संख्या : 68939/98

डाक पंजीयन क्रमांक -048 / SARGUJA DN/ 2024-26

प्रति,

श्री/श्रीमती ....

....

....

....

संदेश

समाज ही सर्वोच्च है। धर्म उसका सहायक है और राज्य उसका रक्षक। राज्य का काम न्याय और सुरक्षा तक सीमित रहना चाहिए, क्योंकि जरूरत से ज्यादा दखल भ्रष्टाचार, जातीय तनाव और सांप्रदायिकता बढ़ाता है। आज परिवार व्यवस्था लगातार कमजोर पड़ रही है, इसलिए किसी भी बड़े समाधान की शुरुआत परिवार और समाज को फिर से मजबूत, स्पष्ट और अधिकार संपन्न बनाने से ही हो सकती है।

पत्र व्यवहार का पता

बजरंग लाल अग्रवाल पोस्ट बाक्स 15, रायपुर (छ.ग.) 492021

website : margdarshak.info

प्रकाशक, संपादक व स्वामी - बजरंगलाल

9617079344

mail : Support@margdarshak.info

मुख्य कार्यालय-

ज्ञानयज्ञ परिवार आश्रम

रामानुजगंज छत्तीसगढ़ 497220

8318621282, 9630766001

लोक स्वराज अभियान

303 कृष्णा शिप्रा अजूरा अपार्टमेंट कौशांबी

गाजियाबाद 201012

9325683604, 9012432074

मुद्रक : माया प्रेस रामानुजगंज, सरगुजा (छ.ग.)

हम आपको ज्ञान तत्व भेजते रहे हैं, लेकिन मुनि जी के रिटायरमेंट के बाद हमारी कुछ आर्थिक मजबूरियाँ भी आ गई हैं। हम लोगों का काम भी बढ़ रहा है और खर्च भी बढ़ रहा है। इन परिस्थितियों में हम लोगों ने तय किया है कि जो लोग कम से कम वर्ष में ₹250 संस्था को देंगे, उनके निवेदन पर ही हम उन्हें ज्ञान तत्व पाक्षिक पत्रिका की छपी हुई प्रति पोस्ट से भेजेंगे।

अब तक ऐसे 742 आवेदन हमें मिल चुके हैं, जिन्होंने या तो इस तरह की मदद की है या ऐसी सहमति व्यक्त की है। हमने यह भी तय किया है कि यदि कोई अलग से व्हाट्सएप से कॉपी चाहेगा तो हम उन्हें ₹50 वार्षिक पर भेजते रहेंगे। अन्य सबके लिए वेबसाइट पर निशुल्क उपलब्ध रहेगी ही।

इस तरह आप कुछ नए नाम भी जोड़ सकते हैं। हम आपसे यह भी मदद चाहते हैं कि आप ज्ञान तत्व में जो भी पढ़ते हैं, उस पर अपने प्रश्न, विचार या प्रतिक्रियाएँ व्हाट्सएप के द्वारा, मोबाइल फोन के द्वारा अथवा पत्र के द्वारा हमें भेजने में मदद करें। इससे हमें आपसे उत्तर देने और चर्चा करने में सुविधा होगी तथा हमें अपनी बातों में सुधार करने का भी अवसर मिलेगा।